CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

5-5

डॉ. विश्रामलाल सिंह

छायावाद के प्रतिनिधि कवि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छायावाद के प्रतिनिधि कवि

डॉ० विजयपाल सिंह
एम० ए० (हिन्दी), एम० ए० (संस्कृत), पी-एच० डी०, डी० लिट०
पूर्व प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी - ५

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सप्तम संस्करण : २००४ ई०

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी - 221 001

फोन व फैक्स : (0542) 2413741, 2413082

E-mail : sales@vvpbooks.com

Website : www.vvpbooks.com

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रानिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी - 221 001

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रिय पुत्री
विमला
को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निवेदन

हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल में काव्य की दृष्टि से छायावाद का महत्त्व-पूर्ण स्थान है। द्विवेदीयुगीन कविता परम्परागत काव्यरूढ़ियों, आरोपित आदर्श-वाद, नैतिक आवरणों से आच्छादित तथा प्राचीन अभिव्यञ्जना-शैली से पूर्ण थी। अतः इन सबके प्रतिक्रियास्वरूप छायावाद का आविर्भाव हुआ। उस संक्रान्तिकाल में अनेक कवियों ने रचनाएँ लिखीं परन्तु उनमें से कतिपय ही कवि-पुंगव अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर ऊपर उठ पाये। उन प्रतिभाशाली कवियों में 'प्रसाद', 'निराला', 'पंत' तथा महादेवी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये चारों कवि छायावादी कविता के प्रतिनिधि कवि हैं।

प्रस्तुत संकलन हिन्दी के उच्चस्तरीय छात्र-छात्राओं को दृष्टि में रखकर, उनके अध्ययनार्थ किया गया है। इसमें 'प्रसाद', 'निराला', 'पंत' तथा महादेवी की प्रमुख रचनाओं को ही स्थान दिया गया है। छायावाद के परिप्रेक्ष्य में इन कवियों को समझने के लिए एक संक्षिप्त तथा उपयोगी भूमिका भी दी गयी है।

इस संकलन में जिन चार कवियों की रचनाएं संगृहीत की गयी हैं उन सबके लिए मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। श्री पुरुषोत्तमदास मोदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी ने इसे सहर्ष एवं शीघ्र प्रकाशित किया है, अतः वे भी साधुवाद के पात्र हैं।

गांधीजयन्ती,
२ अक्टूबर, १९७२
वाराणसी

विजयपाल सिंह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय संस्करण की भूमिका

"छायावाद के प्रतिनिधि कवि" पुनर्मुद्रित होकर आपके हाथों में है। थोड़े-से ही समय में इसके प्रथम संस्करण का समाप्त होना इस बात का सूचक है कि विद्यार्थियों, अध्यापकों एवं हिन्दी साहित्य के अन्य प्रेमियों ने इसमें अपनी रुचि के अनुकूल सामग्री अवश्य पायी है। मेरा विचार था दूसरे संस्करण को अधिक संशोधित और परिवर्द्धित रूप में प्रस्तुत किया जाय किन्तु एक तो विभागीय कार्यों में अधिक व्यस्त रहने के कारण और दूसरे प्रकाशक महोदय की शीघ्रता के कारण अभीष्ट परिवर्द्धन न हो सका। इधर प्रथम संस्करण के पूर्णतया समाप्त हो जाने से यह पुस्तक कुछ दिनों से अप्राप्य हो गयी थी और साहित्य-प्रेमियों की माँग बराबर आ रही थी, जिसकी उपेक्षा अधिक समय तक सम्भव न थी। अतः विवश होकर आंशिक परिवर्द्धन से ही सन्तोष करना पड़ा। पिछले संस्करण में जो अशुद्धियाँ रह गयी थीं उन्हें यथार्थवत् दूर करने का प्रयत्न किया गया है। आकार-प्रकार, साज-सज्जा और मुद्रण के स्तर में भी सुधार किया गया है। आशा है, इस संशोधन के साथ यह पुस्तक पाठकों के लिए अधिक उपयोगी और रुचिकर सिद्ध होगी। विद्वद्जनों के सत्परामर्शों के लिए मैं उत्सुक हूँ। वे जो सुझाव देंगे, उन्हें अगले संस्करण में अवश्य कार्यान्वित किया जायेगा।

रामनवमी
सं. २०३३ वि.

डॉ. विजयपाल सिंह
एम. ए. (हिन्दी), एम. ए. (संस्कृत)
पी-एच. डी., डी. लिट्.
वरिष्ठ आचार्य एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुक्रम

छायावादी काव्य : उद्भव एवं विकास १–३६

जयशंकर 'प्रसाद'

१. जाग री ३९
२. मेरे नाविक ४०
३. अरी वरुणा की शान्त कछार ! ४१
४. पेशोला की प्रतिध्वनि ४३
५. आँसू ४५
६. श्रद्धा (कामायनी) ५१
७. लज्जा ,, ५५

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

१. जागो फिर एक बार ६१
२. सन्ध्या सुन्दरी ६४
३. बादल राग ६६
४. विधवा ६८
५. राम की शक्ति पूजा ७०
६. गहन है यह अन्ध कारा ७६
७. स्नेह निर्झर बह गया है ७७
८. सरोज स्मृति ७८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुमित्रानन्दन पन्त

१. प्रथम रश्मि ८५
२. ग्रन्थि ८७
३. पर्वत प्रदेश में पावस ९०
४. मौन-निमंत्रण ९२
५. परिवर्तन ९५
६. नौका विहार ९९
७. द्रुत झरो १०२
८. बापू के प्रति १०३
९. ताज १०५

महादेवी वर्मा

१. वसन्त-रजनी १०९
२. जीवन विरह का जलजात १११
३. बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ ! ११२
४. रूपसि तेरा घन-केश-पाश ! ११३
५. मैं बनी मधुमास आली ! ११५
६. क्या पूजन क्या अर्चन रे ? ११६
७. मैं नीर भरी दुख की बदली ! ११७
८. चिर सजग आँखें उनींदी···· ११८
९. पंथ होने दो अपरिचित १२०
१०. मन्दिर का दीप १२२
११. सब आँखों के आँसू उजले १२४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छायावादी काव्य : उद्‌भव एवं विकास

आधुनिक हिन्दी काव्यधारा का उद्‌गम उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के उस मिलन-बिन्दु पर हुआ है जिसमें भारत के मध्यवर्गीय परिवार की जीवन-चेतना का विकसनशील स्वरूप विद्यमान है। इस जन-जागरण के मूल में भारत के राजनैतिक एवं सामाजिक संक्रमण का महत्त्वपूर्ण योगदान है। देश की सामन्त-वादी व्यवस्था जर्जर हो चुकी थी और उसका सामाजिक ढांचा सांस्कृतिक एवं आर्थिक विषमता के बोझ से चरमरा रहा था। देश में अँग्रेजी राज्य की स्थापना और उसके विस्तार के फलस्वरूप पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति एवं शिक्षा-प्रणाली भारतीय समाज तथा साहित्य में अपना स्थान बनाती जा रही थी। देशवासियों के मन में राष्ट्रीय भावना का विकास, नवीन मानव-मूल्यों के प्रति बढ़ती हुई आस्था तथा पुरानी मान्यताओं को नकारने की प्रबल आकांक्षा के साथ सुधार-वादी मनोवृत्ति एक नये मार्ग का अन्वेषण कर रही थी। समाज के नियंता और धर्म के ठेकेदार अभी भी अपनी परम्परा के प्रति मोह-ग्रस्त थे और उसके साथ चिपके रहना चाहते थे। वस्तुतः यह दो परस्पर-विरोधी मान्यताओं के संक्रमण का युग था जिसका अवश्यम्भावी प्रभाव साहित्य-जगत् पर भी पड़ रहा था। रीतिकालीन कविता काव्य-शास्त्र की घिसी-पिटी परम्परा का पालन करने में ही अपनी इयत्ता मान बैठी थी। उनमें न तो जन-मानस की अनुगूंज सुनाई पड़ती है और न ही किसी प्रकार की सामाजिक अभिव्यक्ति। नायिका-भेद और नख-शिख-वर्णन जैसे सरस प्रसंगों द्वारा सामन्तों का मानसिक विलास करना, दरबारी मनोवृत्ति वाले कवियों का सहज धर्म बन गया था। इससे परे कुछ सोच पाना उनके लिए अत्यन्त कठिन था। लक्ष्यविहीन रीतिकालीन कविता नैतिक मूल्यों से प्रतिबद्ध न होकर केवल शब्द-चमत्कार के द्वारा पाठकों और श्रोताओं की वाहवाही लूटती रही है। इस युग के कवियों ने जहाँ मध्यवर्गीय समाज की उपेक्षा की, वहीं नारी-समाज के प्रति भी इनकी दृष्टि उदार नहीं रही है। ये नारियों को केवल यौन-तृप्ति का साधन और पुरुषों के हाथ का खिलौना मात्र समझते थे। नारी अपनी पहचान खोकर समाज में भोग्या बनकर जी रही थी।

इसी ह्रासोन्मुख और पतनशील वातावरण में सांस्कृतिक नव-जागरण का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूल बीज सुरक्षित है। भारतेन्दुयुगीन हिन्दी-साहित्य इसी पुरातनता और नवीनता के रूढ़ एवं प्रगतिशील चेतना के संघर्ष का परिचायक है। जिस समय भारतेन्दुजी अपने महत्त्वपूर्ण सहयोग द्वारा हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि करने में लगे हुए थे, उस समय राजा राममोहन राय के 'ब्रह्म-समाज' की स्थापना हो चुकी थी। मानववादी धरातल पर आधृत होने के कारण 'ब्रह्म-समाज' ने समाज में एक नवीन जीवन-चेतना का स्रोत प्रवाहित किया। इसने व्यक्ति और उसकी नैतिकता को विशेष महत्त्व देते हुए पहली बार मनुष्य में नवीन मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा कर समाज में व्यक्ति की समानता का उद्घोष किया। इस भावना से प्रेरित होकर अन्य अनेक सुधारवादी संस्थाओं का जन्म हुआ जिन्होंने अपने-अपने क्षेत्र में धार्मिक-सांस्कृतिक जागरण के लिए सक्रिय सहयोग दिया। ऐसी संस्थाओं में 'आर्य-समाज' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के इस आर्य-समाज ने समकालीन और परवर्ती साहित्य को बहुत अधिक प्रभावित किया जो उसकी लोकप्रियता का परिचायक है। प्रगतिशील आर्य-समाज ने निराश्रित और तिरस्कृत समाज को आश्रय प्रदान कर हिन्दू-धर्म की महान् रक्षा की है। ध्यान देने की बात यह है कि इन सभी सुधारवादी संस्थाओं में यद्यपि वैचारिक मतभेद पाया जाता है, किन्तु सभी का लक्ष्य एक है।

इस समय देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ पर्याप्त विषम हो चुकी थीं। अँग्रेजी राज्य की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाने के बाद उसने एक लम्बे अरसे से त्रस्त भारतीय जनता को अपनी शान्ति-व्यवस्था द्वारा प्रभावित कर लिया था। भारत की संस्कृति को प्रभावित करने के लिए ईसाई धर्म का प्रचार भी बड़े जोर-शोर के साथ चल रहा था। अँग्रेजी शिक्षा और सभ्यता का प्रभाव समाज पर बड़े व्यापक रूप में पड़ रहा था। इस युग के साहित्य में इसी धार्मिक-सांस्कृतिक जागरण की अभिव्यक्ति हुई है। साहित्य की सभी विधाओं में प्रगतिशील आर्य-समाजी प्रभाव एवं सुधारवादी स्वर सुनाई पड़ता है। स्वयं भारतेन्दु और उनके सहयोगी इस नव जागरण के सूत्रधार के रूप में सक्रिय एवं जागरूक थे।

इस समय देश की आर्थिक व्यवस्था अत्यन्त छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। छोटे-मोटे कुटीर-उद्योगों के स्थान पर बड़े-बड़े नवीन उद्योग-धन्धे स्थापित हो रहे थे। इस प्रकार देश का सारा धन विदेशों में चला जा रहा था जिसका संकेत भारतेन्दु की रचनाओं में मिलता है। हमारे देश के कुछ चोटी के नेता औद्योगिक सभ्यता का विरोध कर रहे थे तो कुछ उसके पक्षधर थे। औद्योगिक सभ्यता के अपने लाभ भी थे और हानियाँ भी। गांधीजी कुटीर-उद्योगों के विकास पर अधिक बल दे रहे थे; क्योंकि वे जानते थे कि बड़े-बड़े उद्योग-धन्धे अर्थ-व्यवस्था को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

असंतुलित कर समाज में आर्थिक विषमता ही उत्पन्न करेंगे। इस प्रकार भारतेन्दु-युगीन साहित्य में धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में एक नवीन चेतना की अभिव्यक्ति हुई है।

भारतेन्दु की बहुमुखी प्रतिभा ने उनके जिस जागरूक व्यक्तित्व का निर्माण किया, उससे उस समय का सारा हिन्दी-साहित्य प्रभावित हुआ। इनमें जहाँ एक ओर अपनी प्राचीन परंपराओं के प्रति लगाव दिखाई पड़ता है, वहीं दूसरी ओर नवीन मूल्यों को ग्रहण करने की क्रांतदर्शी चेतना का उन्मेष भी हुआ है। अपनी काव्य-रचनाओं में इन्होंने व्रजभाषा के माध्यम से प्रेम-शृंगार मंडित भक्ति-परक पदों की सृष्टि की तथा खड़ी बोली के माध्यम से अपने नाटकों तथा अन्य गद्य-विधाओं में प्रगतिशील विचारों को रूपायित किया। एक ओर तो इन्होंने लकीर के फकीर पुराण-पंथी लोगों की खबर ली तथा दूसरी ओर फैशनपरस्ती के शिकार तथा आधुनिकता का दंभ भरने वाले लोगों पर भी व्यंग्य किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतेन्दु में प्राचीनता के व्यामोह और नवीनता के उन्मेष का अद्‌भुत सामंजस्य पाया जाता है। इनका व्यक्तित्व इतना जागरूक और दृष्टि इतनी सतर्क है कि समाज की हर गतिविधि को लक्ष्य कर इन्होंने उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति की है। भारतेन्दु और उनके सहयोगियों का सबसे बड़ा महत्त्व इस बात में निहित है कि इन्होंने अपनी रचनाओं में मध्यवर्गीय समाज को प्रतिष्ठित कर उनकी विविध समस्याओं पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया। इसमें संदेह नहीं कि इन्होंने समाज-सुधार, जातीय महत्त्व एवं राष्ट्र-प्रेम जैसे नवीन विषयों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट कर उसके हृदय में अपना स्थान बना लिया।

भारतेन्दु और उनके सहयोगी साहित्यकारों ने उस समय की सामाजिक विसंगतियों, धार्मिक रूढ़ियों एवं राजनीतिक कुचक्रों का स्पष्ट चित्र खींचकर अपनी यथार्थवादी मनोवृत्ति का परिचय दिया तथा 'निज भाषा-उन्नति' को ही 'सब उन्नति' का मूल स्वीकार करते हुए हिन्दी भाषा के प्रति अपनी अटूट आस्था का उद्‌घोष किया। अपने जातीय गौरव की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर इन साहित्य-मनीषियों ने 'अपनेपन' को देश के साथ संबद्ध करते हुए समाज में राष्ट्र-प्रेम की भावना का प्रसार किया। इस प्रकार इन्होंने साहित्य के लिए यथार्थवादी भावभूमि का सुदृढ़ आधार प्रदान किया तथा विषय-सामग्री के रूप में राष्ट्रीय प्रेम-भावना का अजस्र स्रोत प्रवाहित किया। एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि रीति-काल के रीति-मुक्त कवियों की स्वच्छन्द प्रेम-धारा का स्वरूप भी यहाँ सुरक्षित रहा है, जिसका चरम-विकास आगे चलकर छायावादी काव्य के रूप में दिखाई पड़ता है। भारतेन्दु-युग की इन्हीं विशेषताओं ने छायावादी काव्य को आकार प्रदान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आधुनिक हिन्दी कविता का बीज भारतेन्दु-युग में ही अंकुरित हो चुका था, किन्तु उसका पूर्ण विकास छायावादी युग में हो सका।

भारतेन्दु-युग में जिस सांस्कृतिक चेतना का प्रादुर्भाव हुआ था, द्विवेदी-युग में आकर उसकी पूर्ण प्रतिष्ठा हुई। रीतिकाल की जिस स्वच्छन्द-धारा की चर्चा की गई है, वह श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त और हरिऔध के काव्यों में जीवित है। संक्रांति के इस युग में जहाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जागरण का स्वर प्रमुख हो गया था, उन सारे संघर्षों को रूपायित करने के लिए इन कवियों ने ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली को स्वीकार कर अपूर्व साहस का परिचय दिया। प्रकृति-वर्णन की घिसी-पिटी निर्जीवता के स्थान पर प्रकृति के वस्तुपरक चित्रण ने पर्याप्त सरसता का संचार किया। आगे चलकर यही प्रकृति छायावादी कवियों की जीवन-सहचरी बनी और उनके सुख-दुःख में हाथ बँटाने लगी। सन् १९०० ई० से 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ था। द्विवेदीजी ने इसके माध्यम से खड़ी बोली को परिमार्जित किया। खड़ी बोली के विकास में द्विवेदीजी का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस युग में आकर भारतेन्दुकालीन सांस्कृतिक जागरण का प्रमुख स्वर सुधारवादी हो गया। धार्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक, सभी क्षेत्रों में सुधारों की प्रमुखता दिखाई पड़ती है। दयानन्द सरस्वती और विवेकानन्द जैसे धर्म-नेताओं ने नैतिक मूल्यों पर विशेष बल दिया। राष्ट्रीय भावना के विकास में बंग-भंग जैसे राजनीतिक आन्दोलनों ने महत्त्वपूर्ण योग दिया। रीतिकालीन हिन्दी कविता में राधा-कृष्ण के माध्यम से नायिका-भेद का जैसा शृंगारिक वर्णन किया जाता रहा है, वैसा इस युग में नहीं पाया जाता। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी-युग के प्रतिष्ठित कवि रहे हैं। 'हरिऔध'जी के 'प्रिय-प्रवास' नामक महाकाव्य में न तो लीला-विहारी कृष्ण का दर्शन होता है और न विरह-विदग्धा प्रेयसी राधा का। 'हरिऔध'जी ने इन दोनों को जननेता एवं समाज-सेविका के रूप में चित्रित कर नवीन लोकादर्शवाद की प्रतिष्ठा की है। इसी प्रकार गुप्तजी ने भी 'साकेत' की रचना लौकिक भावभूमि पर ही की है। 'साकेत' का काव्यात्मक महत्त्व उसके लोकादर्शवाद में ही निहित है। राम, लक्ष्मण और उर्मिला के व्यावहारिक आचरण सामान्य प्राणियों के व्यवहार से भिन्न नहीं हैं। इन दोनों कवियों के काव्यों का अध्ययन करने से यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने भक्तिकाल की दैन्य-भावना और रीतिकालीन शृंगारिकता के स्थान पर आधुनिक मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है। भारतेन्दु-युग में यथार्थवादी भावभूमि, राष्ट्रीय भावना और स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्ति—इन तीन भावभूमियों का स्वरूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्धारित हो चुका था। द्विवेदी-युग में प्रथम दो का विकास तो व्यापक रूप में हुआ, किन्तु तीसरी का मार्ग अवरुद्ध-सा हो गया। श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाण्डेय और मैथिलीशरण गुप्त की कुछ गीतात्मक रचनाओं में इसका ईषत् आभास पाया जाता है। छायावादी-युग में आकर यह तीसरी भावभूमि अत्यन्त प्रधान हो गयी और अन्य दोनों के विकास ने छायावादी काव्य को पूर्णता प्रदान की। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी कविता कहीं बीच से टपकी हुई वस्तु नहीं है, बल्कि उसकी विकास-प्रक्रिया एक सुनिश्चित आधार पर प्रतिष्ठित है।

छायावादी काव्य-धारा द्विवेदी-युग के अनेक अन्तर्विरोधों के बीच से प्रवाहित हुई है जिसमें स्वानुभूतिमयी चेतना की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है। द्विवेदी-युग के कवि जहाँ प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विद्रोही थे, वहीं वे स्वनिर्मित आदर्शों एवं नियमों में इस प्रकार उलझ गये थे कि उनकी अनुभूति जागरूक चेतना में विलुप्त-सी हो गयी थी। छायावाद को कई विभिन्न प्रवृत्तियों के पारस्परिक आदान-प्रदान का प्रतिफल भी माना जा सकता है। छायावादी कविता हिन्दी के कुछ प्रतिष्ठित आलोचकों की दृष्टि में खटकती रही, पर उसका उत्तरोत्तर विकास होता रहा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्वप्रथम व्यवस्थित ढंग से छायावादी कविता का मूल्यांकन करते हुए छायावाद और रहस्यवाद दोनों को एक बताया। हाँ, यह बात अवश्य है कि छायावादी कवियों के रहस्यवाद में उन्हें कोई विशेष गंभीरता नहीं दिखाई दी। डॉ. रामकुमार वर्मा ने भी छायावाद और रहस्यवाद को अभिन्न माना है। महादेवी वर्मा ने पहली बार छायावाद और रहस्यवाद को अलग-अलग मानते हुए रहस्यवाद को छायावाद की एक विशेष प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया है जिसे आज अधिकांश आलोचक मानने लगे हैं।

छायावाद की प्रवृत्तियों और उसकी भावभूमियों पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है कि हिन्दी के गण्यमान्य आलोचकों की दृष्टि में छायावाद का क्या महत्त्व रहा है। आचार्य शुक्लजी ने इसका मूल्यांकन एक काव्यधारा के रूप में नहीं, अपितु चित्र भाषा-शैली के रूप में किया है जिसमें शिल्पगत वैशिष्ट्य का महत्त्व हुआ करता है। इसीलिए शुक्लजी ने इसे पश्चिमी अभिव्यंजनावाद, कलावाद और प्रतीकवाद का प्रभाव भी स्वीकार किया है। स्पष्ट है कि छायावादी कविता के सम्बन्ध में शुक्लजी के विचार अत्यन्त प्रतिक्रियावादी हैं। हम छायावाद को मात्र एक लाक्षणिक प्रणाली एवं चित्रभाषा-शैली कह कर उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। उसका शिल्प-पक्ष जितना प्रबल है, अनुभूति भी उतनी ही विस्तृत एवं प्रभावशाली है।

छायावादी कविता में सांस्कृतिक नव-जागरण, राष्ट्रीय भावना, आदि का जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरूप पाया जाता है, वह अत्यन्त व्यापक भावभूमि पर आधृत है। इन कवियों का लक्ष्य केवल हिन्दू-जाति के जागरण तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि उनकी आध्यात्मिक दृष्टि सर्वथा नूतन प्रकाश का अन्वेषण करती रही है। उसमें सर्वात्मवाद और विकासवाद का जो स्वरूप निहित है, उसी के कारण उसमें नव-मानवतावादी चेतना का पूर्ण संचार हो सका है। इसीलिए पण्डित नन्द-दुलारे वाजपेयी छायावाद को केवल अभिव्यक्ति की लाक्षणिक प्रणाली-विशेष न मानकर उसमें एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना तथा स्वतन्त्र जीवन-दर्शन का पोषण करते हैं। उनके अनुसार पूर्ववर्ती काव्य-धारा से यह अपना पृथक् अस्तित्व रखता है और इसका सांस्कृतिक गौरव अक्षुण्ण है। सच बात तो यह है कि भारतीय संस्कृति के प्रति शुक्लजी की अपनी मान्यताएँ हैं जिसका आधार वे भारतीय लोकादर्श को स्वीकार करते हैं।

डॉ. नगेन्द्र जैसे आलोचकों ने छायावाद का मूल्यांकन मनोवैज्ञानिक आधार पर करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार इसकी पृष्ठभूमि पूर्णतः लौकिक है तथा मानव-मन की दमित कामवासनाएँ इसकी प्रेरणा-स्रोत हैं। छायावादी कविता को रोमानी प्रवृत्तियों का पुनरुत्थान मानते हुए वे लिखते हैं—"छायावाद मूलतः रोमानी कविता है और दोनों की परिस्थितियों में जागरण और कुण्ठा का मिश्रण है।"[1] इसी प्रकार छायावादी कविता को शृंगारिक मानते हुए उन्होंने व्यक्तिगत कुण्ठाओं को उसका उद्गम-स्थल स्वीकार किया है जो काम के चारों ओर केन्द्रित रहा करती हैं।[2] इसके साथ ही डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह मानते हुए विद्रोह को ही उसका मूल स्वर स्वीकार किया है। आचार्य शुक्ल ने छायावाद के वस्तु-पक्ष की उपेक्षा करते हुए उसके शिल्प-पक्ष को महत्त्व दिया था किन्तु डॉ. नगेन्द्र की दृष्टि में अनुभूति का वैशिष्ट्य ही अभिव्यंजना के सौन्दर्य का कारण है। इस प्रकार उन्होंने छायावाद को शुद्ध कविता मानते हुए उसमें अनुभूति की अन्तःप्रेरणा को महत्त्व दिया है।

हिन्दी-आलोचकों ने ही नहीं, अपितु छायावादी कवियों ने भी उसकी अनुभूति और वस्तु-पक्ष की व्यापकता पर बल दिया है। छायावाद के प्रवर्तक स्व० जयशंकर 'प्रसाद' अनुभूति तथा उसकी भंगिमा को छायावाद की मूल प्रकृति मानते हैं। उनके अनुसार "छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक-विधान

---

१. डॉ. नगेन्द्र : 'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ', पृ. १४।
२. वही, पृ. १०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं।"[1] इस प्रकार 'प्रसाद'जी की दृष्टि में छायावादी कविता केवल चमत्कारिक नहीं है, बल्कि उसमें आंतरिक सौन्दर्य की अनुभूति भी पायी जाती है। कलात्मक शिल्प और स्वानुभूति की विवृति—दोनों ही छायावाद की प्रमुख विशेषताएँ हैं। महादेवी वर्मा ने छायावाद को 'व्यक्तिगत अनुभूति' तथा डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'हृदय की एक अनुभूति' कहकर उसके आंतरिक सौन्दर्य को महत्त्व प्रदान किया है। इसी प्रकार सुमित्रानन्दन पंत छायावाद के वस्तु-पक्ष की व्यापकता पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—"छायावादी कविता ने सोई हुई भारतीय चेतना की गहराइयों में नवीन रागात्मकता की माधुर्य-ज्वाला, नवीन जीवन-दृष्टि का सौन्दर्य-बोध तथा नवीन विश्व-मानवता के स्वप्नों का आलोक उँड़ेला। विश्वबोध के व्यापक आयाम, लोक-मानव की नवीन आकांक्षाएँ, जीवन-प्रेम से प्रेरित, परिष्कृत अहंता के मांसल सौन्दर्य का परिधान उसने पहले-पहल हिन्दी-कविता को प्रदान किया। यह सब छायावाद के लिए इसलिए संभव हो सका कि भारतीय पुनर्जागरण विश्व-सभ्यता के इतिहास के एक और भी महान् लोक-जागरण का अंग बनकर आया था; विश्व-सभ्यता के इतिहास का ही नहीं, वह मानव-चेतना के भी एक महान् सांस्कृतिक क्रांति के युग का समारम्भ बनकर उदित हुआ। इसलिए छायावाद में हमें राष्ट्रीय जागरण के मुखर गीतों के अतिरिक्त मानवीय जागरण के गंभीर स्वप्न, मौन संवेदन-भरे स्वर तथा धरती के जन-जागरण के संघर्ष-मुखर, विद्रोह-भरे स्वर भी एक साथ सुनने को मिलते हैं।"[2] इसके साथ ही पंतजी प्रगतिवाद को छायावाद की ही एक धारा मानते हैं और दोनों में जागरण के स्वर का उल्लेख करते हैं। उनके अनुसार छायावाद में जहाँ मानवीय जागरण का स्वर प्रधान है, वहीं प्रगतिवाद में लोक-जागरण का।

इस सांस्कृतिक जागरण को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पाश्चात्त्य प्रभाव के रूप में देखा है तो 'प्रसाद' एवं महादेवी वर्मा ने उसे भारतीय परंपरा के साथ जोड़ने का प्रयास किया है। किन्तु सच बात तो यह है कि छायावादी सांस्कृतिक जागरण को न तो केवल विलायती प्रभाव कहा जा सकता है और न ही भारतीय परंपरा के मूल में उसका मूल्यांकन किया जा सकता है। यह सच है कि इसे भारतीय परंपरा से सर्वथा अलग करके देखना आलोचक के पूर्वाग्रह का परिचायक है किन्तु पाश्चात्त्य प्रभाव को स्वीकार करने से भी हम भाग नहीं सकते। इसमें जहाँ उपनिषदों का जिज्ञासामूलक रहस्यवाद तथा बौद्ध-दर्शन का दुःखवाद पाया

---

१. जयशंकर 'प्रसाद' : 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध', पृ० १४९।
२. सुमित्रानन्दन पंत : 'रश्मि-बंध' (परिदर्शन), पृ० १६।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है, वहीं पाश्चात्य सौंदर्यवाद, व्यक्ति-स्वातंत्र्य एवं विकासवाद की झलक भी देखने को मिलती है। इस प्रकार छायावादी सांस्कृतिक जागरण का परिप्रेक्ष्य अत्यन्त व्यापक एवं महत्त्वपूर्ण है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने छायावाद की वैयक्तिकता को विशेष महत्त्व दिया है। उनके अनुसार—"पिछले पन्द्रह-बीस वर्षों की हिन्दी-कविता में उसकी सैकड़ों वर्ष की परंपरा के विरुद्ध वैयक्तिकता का अबाध प्रवेश हुआ है। चाहे कवि-कल्पना के द्वारा इस जगत् की विसदृशताओं से मुक्त एक मनोहर-जगत् की सृष्टि कर रहा हो, या चिन्ता द्वारा किसी अज्ञात रहस्य के भीतर प्रवेश करने की चेष्टा कर रहा हो, या अपनी अनुभूति के बल पर पाठक के वासनान्तर्विलीन मनोभावों को उत्तेजित कर रहा हो—सर्वत्र उसकी वैयक्तिकता ही प्रधान हो उठती है।"[1] द्विवेदीजी अँग्रेजी शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार को ही इस व्यक्ति-स्वातंत्र्य का मूल कारण मानते हैं और उनका विचार है कि पश्चिमी देशों में वैयक्तिक स्वतंत्रता उनके आंतरिक जीवन का प्रतिफल है किन्तु हमारे यहाँ उसका स्वरूप भिन्न है। इसीलिए आरंभिक अवस्था में छायावादी कविता पर्याप्त अस्वाभाविक प्रतीत होती थी, किन्तु बाद में चलकर छायावादी कवियों ने इसमें परिष्कार किया।

प्रगतिवादी आलोचक डॉ० रामविलास शर्मा छायावाद के उद्गम का कारण पूँजीवादी व्यवस्था को मानते हैं। उनका कहना है कि स्वतंत्रता की भावना ही छायावादी कविता का मूल स्वर है। रीतिकालीन एवं द्विवेदीयुगीन सुधारवादी कविता के प्रतिक्रियास्वरूप छायावादी कविता का जन्म हुआ। जर्जर समाज की सारी विषमताओं को मिटाकर नये सिरे से उसका निर्माण करने के लिए छायावादी कवियों ने अपने काव्य में विद्रोह और क्रांति की ज्वाला फूँकी। इस प्रकार डॉ० शर्मा ने छायावाद को एक प्रगतिशील साहित्यिक अन्दोलन के रूप में स्वीकार किया है। श्री शिवदानसिंह चौहान ने पलायनवादी प्रवृत्ति को छायावाद की प्रमुख विशेषता के रूप में स्वीकार किया था किन्तु डॉ० शर्मा उसमें पलायनवादी भावना के साथ ही क्रांति, विद्रोह, विजय एवं मानवतावादी चेतना का व्यापक प्रसार भी देखते हैं। इसीलिए वे लिखते हैं—"उसे पलायनवादी, प्रतिक्रियावादी कहकर लांछित करना सरासर अन्याय है। उसमें पराजय और पलायन की भावनाएँ हैं, तो विद्रोह, विजय, मानव-मात्र के प्रति सहानुभूति के स्वर भी हैं।"[2] कहने का तात्पर्य यह कि छायावाद पर विचार करते

१. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', पृ० १३७।
२. डॉ० रामविलास शर्मा : 'संस्कृति और साहित्य', पृ० ४४-४५।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाले विविध आलोचकों ने उसे अपने-अपने वातायन से देखने का प्रयास किया है और इस प्रयास में वे छायावाद की किसी प्रमुख विशेषता को उसका मूल स्वर मान बैठे हैं।

छायावाद के प्रति डॉ० देवराज का दृष्टिकोण कुछ भिन्न ही प्रतीत होता है। एक ओर जहाँ वे उसमें चमत्कारिक विशेषताओं को ही अधिक देखते हैं, वहीं दूसरी ओर उसमें उन्हें स्वस्थ एवं निष्कपट अनुभूति का दर्शन नहीं होता। उनके अनुसार—"उसमें ध्वनिपूर्ण शब्दों एवं चित्र-विचित्र कल्पनाओं का आडम्बर अधिक है; स्वस्थ, निष्कपट, सहज अनुभूति का अंश कम। जीवन के निकट स्पर्श के अभाव में उसका कलेवर निर्जीव साज-सज्जा और चमत्कार से बोझिल है। इस दृष्टि से वह ह्रासयुगीन संस्कृत-काव्य और चमत्कारान्वेषी रीति-काव्य से केवल इसी बात में भिन्न है कि वह शरीर-केन्द्रित न होकर बुद्धि-केन्द्रित है।"[1] इनकी दृष्टि में छायावादी काव्य मुख्य रूप से प्रेम और सौन्दर्य का काव्य था किन्तु रहस्यवाद का आश्रय ग्रहण कर लेने के कारण इन कवियों की ऐन्द्रिय अभिव्यक्ति दुर्बल हो गयी तथा उनकी अनुभूति का क्षेत्र भी उतना विस्तृत नहीं हो सका।

छायावाद के इन आलोचकों के मतों का मूल्यांकन करने से एक बात बहुत स्पष्ट हो जाती है कि इसमें युगानुरूप अनेक विशेषताओं का समावेश सहज ही हो गया है। इसीलिए इसपर विचार करते समय विभिन्न विचारकों का ध्यान कुछ अलग-अलग विशेषताओं पर ही विशेष रूप से केन्द्रित रहा है। यही कारण है कि उन्होंने कुछ प्रमुख विशेषताओं को ही छायावाद का मूल प्रतिपाद्य स्वीकार कर लिया है। वे विशेषताएँ इतनी अधिक हैं कि उन सबको ध्यान में रखते हुए छायावाद की कोई सुनिश्चित परिभाषा करना बड़ा कठिन है। छायावाद की विषय और शिल्पगत प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं जिनकी ओर आलोचकों की दृष्टि गयी है—प्रकृति-चित्रण, वैयक्तिकता, राष्ट्रीय भावना एवं सांस्कृतिक जागरण, विद्रोही स्वर, कल्पना की प्रधानता, नारी के प्रति नवीन दृष्टि, मानवतावादी दृष्टिकोण, रहस्यात्मकता, वेदनाधिक्य, कलात्मक एवं सूक्ष्म अभिव्यंजना लाक्षणिक एवं बिम्वविधायिनी भाषा, सांगीतिक तत्त्व एवं प्रगीतात्मकता, प्रतीक विधान एवं मुक्त छन्दों का प्रयोग।

प्रेम और सौन्दर्य छायावादी कविता का प्रमुख विषय है। प्रेम का परिप्रेक्ष्य इतना व्यापक है कि छायावाद में पहली बार मानवीय प्रेम के साथ ही प्राकृतिक

---

१. डॉ० देवराज, 'छायावाद का पतन', पृ० १२०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेम को भी इतना महत्त्व प्रदान किया गया। इस युग के कवियों के लिए प्रकृति निर्जीव और उपेक्षित नहीं रह सकी। इन्होंने उसपर मानवीय भावों को आरोपित करते हुए उसे मानव की आदि सहचरी के रूप में स्वीकार किया। प्रकृति का मानवीकरण छायावाद की एक प्रमुख विशेषता बन गयी है तथा सर्वात्मवाद को छायावाद का मूल दर्शन स्वीकार किया जा सकता है। छायावादी कवियों ने प्रकृति के प्रत्येक उपकरण में परम सत्ता का दर्शन किया है। इस प्रकार प्रकृति को विराट् चेतना से सम्पन्न कर इन कवियों ने प्रकृति के प्रति मानवीय भावनाओं को अधिक रागात्मक बना दिया है। प्रकृति हमारे सुख-दुःख में बराबर हाथ बँटाती हुई दिखाई पड़ती है।

जड़ प्रकृति में विराट् सत्ता का आरोप करने के फलस्वरूप नदी, पर्वत, सूर्य, चन्द्र आदि सभी प्राकृतिक वस्तुओं में दैवी-शक्ति का सहज समावेश हो गया। इस सम्बन्ध में महादेवीजी लिखती हैं—"वास्तव में उस प्राचीन जीवन ने मनुष्य को प्रकृति से तादात्म्य अनुभव करने की, उसके व्यष्टिगत सौन्दर्य पर चेतना व्यक्तित्व के आरोप की तथा उसकी समष्टि में रहस्यानुभूति की सभी सुविधाएँ सहज ही दे डालीं। हम वीर पुत्रों और पशुओं की याचना से भरी वेद-ऋचाओं में जो इतिवृत्त पाते हैं, वही उषा, मरुत् आदि को चेतन अस्तित्व देकर एक सहज और सरल सौन्दर्यानुभूति में बदल गया है। फिर यही व्यष्टिगत सौन्दर्य-बोध उस सर्ववाद का अग्रदूत बन जाता है, जिसका अंकुर पुरुषसूक्त में, विश्व पर एक विराट् शरीरत्व के आरोपण द्वारा प्रकट हुआ।"[1] महादेवीजी के इस उद्धरण से छायावादी कवियों के प्रकृति-सम्बन्धी दृष्टिकोण पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। प्रकृति के साथ अपने जीवन का तादात्म्य स्थापित करते हुए वे उसे अपने जीवन-दर्शन का महत्त्वपूर्ण अंग स्वीकार करते हैं। प्रकृति इन कवियों की रागात्मकता को ही प्राणवान् नहीं बनाती, बल्कि उनकी चेतना को भी आकार प्रदान करने में सहायता करती है।

छायावादी कवियों ने प्रकृति के सूक्ष्म और स्थूल तथा कोमल एवं उग्र सभी रूपों को इतना व्यापक आयाम प्रदान किया है कि अनेक आलोचकों ने प्रकृति-प्रेम को ही छायावाद का प्रमुख विषय स्वीकार कर लिया। प्रतीकों और लाक्षणिक भाषा के माध्यम से प्रकृति का अलंकृत वर्णन करने में छायावादी कवि अत्यन्त पटु हैं। इसमें सन्देह नहीं कि "छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला

---

१. महादेवी वर्मा : 'आधुनिक कवि' (१) भूमिका, पृ० १४।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दुःख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल को एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गयी, अतः मनुष्य के अश्रु, मेघ के जल-कण और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है।....जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके असीम हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा।"[1] स्पष्ट है कि प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोपण अत्यन्त प्राचीन काल से ही किया जाता रहा है और छायावादी कवियों ने अनेकरूपता में एकरूपता का दर्शन कर अपने प्राकृतिक सौन्दर्य को दार्शनिक गौरव से अत्यन्त महिमावान् बना दिया है।

नारी-विषयक नवीन दृष्टिकोण छायावाद की दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति है। छायावाद के पूर्व हिन्दी-काव्यों में नारी का जो स्वरूप प्रतिष्ठित किया गया है, उसे पढ़कर बड़ी निराशा होती है। सन्त-कवियों ने नारी को साधना-मार्ग की सबसे बड़ी बाधा मानकर नारी का घोर तिरस्कार किया तो रीतिकालीन कवि उसके बाह्य-सौन्दर्य पर रीझकर नायिका-भेद और नख-शिख वर्णन में ही उलझे रहे। उनके लिए नारी प्रेमिका, पत्नी और भोग्या के अतिरिक्त जैसे अलग से कोई अस्तित्व ही नहीं रखती। छायावादी युग में नवीन सांस्कृतिक चेतना की जागृति के फलस्वरूप नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण में महान् परिवर्तन हुआ। छायावादी कवियों ने सर्वप्रथम उसे मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित कर उसकी वेदना को सहलाया और उसके आँसू पोंछकर उसे श्रद्धा की मूर्ति घोषित किया। छायावादी कवियों के लिए नारी केवल प्रेमिका के ही रूप में न रह सकी, अपितु उसने अपने मातृत्व के गौरव को प्राप्त किया। इन कवियों ने उसमें नारी-सुलभ आदर्श गुणों की प्रतिष्ठा कर देवी के रूप में उसे सम्मानित भी किया। वह उनकी प्रेमिका और जीवन-सहचरी भी बनी रही जिसके साथ उन्होंने ग्रन्थि-बन्धन किया और आवश्यकता पड़ने पर आँसू भी बहाया। अपने भोगे हुए जीवन के अनुरूप ही इन्होंने नारी के अनेक स्वरूपों का उद्घाटन किया। नारी का अक्षुण्ण अधिकार उसे वापस मिला और वह पुरुष के कदम से कदम मिलाकर साथ चलने लगी। पुरुषों की सबसे बड़ी प्रेरणा-शक्ति के रूप में उसने अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। कवि की सूक्ष्म-दृष्टि सड़क पर पत्थर तोड़ने वाली तथा

---

१. महादेवी : 'सान्ध्य-गीत' (अपनी बात), पृ० ६।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैले-कुचैले वस्त्रों को धारण कर मिट्टी ढोने वाली नारी की ओर भी गयी।

वैयक्तिकता भी छायावाद की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। छायावाद के अनेक आलोचकों ने छायावाद की वैयक्तिकता की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। भावों और विचारों में सर्वत्र इनकी वैयक्तिकता दिखाई पड़ती है। छायावादी कविता का स्वरूप प्रगीतात्मक है जिसकी भावभूमि ही वैयक्तिक है। इन कवियों के व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के मूल में पाश्चात्य प्रभाव अवश्य है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता किन्तु संक्रान्तिकाल में हमारे समक्ष ईश्वर अथवा मनुष्य में आस्थावान् होने की दो स्थितियाँ आती हैं। या तो हम ईश्वर को ही सब कुछ मानकर मनुष्य को अत्यन्त अक्षम समझते हैं अथवा ईश्वर में आस्थावान् होकर भी मनुष्य के महत्त्व को प्रतिपादित करते हैं। छायावादी कवियों की चेतना अध्यात्मोन्मुख होने के साथ ही लौकिक भावभूमि पर प्रतिष्ठित है। संक्रान्ति के इस युग में युद्ध की विभीषिका ने समाज के आत्मविश्वास को खण्डित किया और इस युग के कवि आत्म-गौरव के प्रति चैतन्य हुए। यही चेतना एक निश्चित बिन्दु पार कर लेने के पश्चात् वैयक्तिकता के रूप में परिवर्तित हो गयी। भोगी हुई अनुभूतियों की आत्माभिव्यक्ति के कारण ही छायावादी कविता की प्रेमभावना अधिक सशक्त एवं मार्मिक है तथा इसीलिए स्वाभाविक और विश्वसनीय भी। प्रसाद ने स्वयं इन रचनाओं में वेदना की स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति की ओर संकेत किया है। सुख-दुःख के भोक्ता के रूप में इन कवियों ने कलात्मक स्वच्छन्दता का प्रश्रय लिया तथा निजी अनुभूति के माध्यम से यथार्थ-बोध को प्रतिपादित किया।

अतः छायावादी कविता को जीवन और जगत् के यथार्थ से दूर बताना सर्वथा अनुपयुक्त है। वायवीयता को प्रधान मनोवृत्ति के रूप में प्रतिपादित करना छायावादी कविता के प्रति अन्याय करना है। इसमें सन्देह नहीं कि इस युग की कविता ठोस मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित है।

इस युग में द्विवेदीयुगीन वर्णनात्मक कविता का प्रायः अभाव ही पाया जाता है। कवियों की स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति प्रगीतात्मक है। यदि 'निराला'जी की कतिपय रचनाओं को छोड़ दिया जाय तो सभी छायावादी कवियों की रचनाओं का मूल रूप प्रगीतात्मक है। यहाँ तक कि 'प्रसाद'जी की कामायनी का स्वरूप भी प्रगीतात्मक शैली में ही निहित है। लय और ताल के समुचित विन्यास के कारण ही छायावादी कवियों के प्रगीत-मुक्तक सांगीतिक तत्त्वों से परिपूर्ण हैं।

इसके अतिरिक्त कल्पना, मानववादी चेतना, लाक्षणिक भाषा और सुन्दर प्रतीक-योजना के द्वारा इन कवियों ने अपनी कविता को अत्यन्त समृद्ध बना दिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। जिस मानवतावादी चेतना का प्रगतिशील स्वरूप हमें सन्त-काव्य में दिखाई देता है, रीतिकाल में आकर उसका स्रोत ही सूख गया था किन्तु छायावादी कवियों—विशेष रूप से 'निराला'जी ने उसे पुनः प्रतिष्ठित करते हुए उसे व्यापक आयाम प्रदान किया। सन्त-कवियों ने फिर भी नारी की पूर्णतः उपेक्षा की थी और इन्होंने उसके दुःख और दर्द को सबसे पहले लक्ष्य किया। किसान, मजदूर, भिखारी और अभिशप्त नारी के प्रति इन्होंने अपनी पूरी-पूरी सहानुभूति व्यक्त की।

अस्तु, छायावाद का जन्म भारत की ही उर्वर भूमि में हुआ है, उसे यूरोप और बंगला का प्रभाव कहकर उपेक्षित नहीं किया जा सकता। कोई भी विदेशी काव्यधारा इतनी मजबूती के साथ अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकती जैसी छायावादी कविता ने किया है। साथ ही हम इसे भी अस्वीकार नहीं कर सकते कि छायावाद के आरम्भिक कवियों ने अंग्रेजी तथा बंगला से प्रेरणा ग्रहण की किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि उसकी कोई परम्परा ही नहीं है। छायावादी कविता न तो शिल्पगत विद्रोह है, न चित्र भाषा-शैली; वह हिन्दी-काव्यधारा की एक महान् उपलब्धि है। सच बात तो यह है कि छायावादी कवियों की मानवतावादी दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में ही हम नव-निर्मित मानव-मूल्यों को परखकर उसे जीवंत आयाम प्रदान कर सके हैं।

जयशंकर 'प्रसाद' मूलतः प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं और उनका कवि-व्यक्तित्व आत्मचेतना के गौरव से महिमान्वित है। छायावादी कविता के विकास में 'प्रसाद', 'निराला', 'पंत' तथा महादेवी—सभी ने अपना सक्रिय सहयोग दिया किन्तु आदि-प्रवर्तक रूप में 'प्रसाद'जी का नाम प्रतिष्ठित हो चुका है। यदि 'प्रसाद'जी के काव्य-विकास का मूल्यांकन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आरम्भ में उन्होंने व्रजभाषा के माध्यम से वर्णनात्मक रचनाएँ प्रारम्भ कीं किन्तु यह क्रम अधिक न चल सका। 'झरना' में संगृहीत रचनाओं को देखने से ज्ञात होता है कि उनमें छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि निर्मित हो रही थी। इन रचनाओं में आत्माभिव्यक्ति, प्रकृति से तादात्म्य, वेदना की विवृति तथा प्रगीतात्मक शैली—सभी कुछ विद्यमान हैं। इस संग्रह की 'किरण' और 'विषाद' शीर्षक कविताएँ छायावाद की प्रमुख विशेषताओं से अलंकृत हैं। दोनों कविताओं से एक-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे—

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज,
रँगी हो तुम किसके अनुराग,
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा—

कौन, प्रकृति के करुण काव्य-सा
वृक्ष-पत्र की मधु छाया में।
लिखा हुआ सा अचल पड़ा है,
अमृत सदृश नश्वर काया में॥

इन उद्धरणों को देखने से ज्ञात होता है कि इनमें कवि का प्रकृति के साथ सहानुभूति का स्वर मुखरित हुआ है। लाक्षणिक भाषा में प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति ललित बिम्बों की सृष्टि करती है। किरण का मानवीकरण प्राकृतिक सहानुभूति को अधिक सहज और स्वाभाविक बनाने में सहायक है। विषाद की रेखाएँ स्पष्ट और गाढ़ी हैं। कवि के एकाकीपन की आत्माभिव्यक्ति एवं आकुल अंतर की छटपटाहट में कविता का स्वर निराशावाद का स्पर्श करता है।

इसके साथ ही नैतिकता की दुहाई देकर द्विवेदी-युग में जिन विषयों को काव्य में रूपायित नहीं किया जाता था, उसकी उन्मुक्त अभिव्यक्ति के लिए 'झरना' की कतिपय रचनाओं में विशेष आतुरता दिखाई पड़ती है। मैथिलीशरण गुप्त और 'हरिऔध'जी के प्रेम-प्रसंगों से संबंधित चित्रण मर्यादा और नैतिक मूल्यों से प्रतिबद्ध है किन्तु 'प्रसाद'जी ने 'झरना' की रचनाओं में ही अपना विद्रोही स्वर मुखरित किया है। 'निवेदन' शीर्षक कविता का निम्न उद्धरण द्रष्टव्य है—

मेरे मरुमय जीवन के हे सुधा स्रोत ! दिखला जाओ।
अपनी आँखों के आँसू से इसको भी नहला जाओ॥
डरो नहीं, जो, तुमको मेरा उपालम्भ सुनना होगा।
केवल एक तुम्हारा चुम्बन इस मुख को चुप कर देगा॥

उस समय प्रेम का इतना व्यक्तिगत एवं खुला हुआ चित्रण करना बड़े साहस का काम था। कवि ने अनुभव किया कि जीवन में केवल सत्-पक्ष ही सब कुछ नहीं है—उसका असत्-पक्ष भी महत्त्वपूर्ण है। हम अपने भोगे हुए जीवन में सुख-दुख, अच्छाई-बुराई सभी का अनुभव करते हैं, अतः इन सबकी तद्वत् अभिव्यक्ति काव्य में होनी चाहिए। जीवन में प्रत्येक अभिलाषा को पूरी करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है और उसमें असफल होने पर व्यक्ति चिन्ता, दुख, असन्तोष और कुण्ठा से पीड़ित होता है। कवि यदि समाज की इस पीड़ा के साथ अपनी पीड़ा का तादात्म्य स्थापित करता है तो इसे अनैतिक नहीं कहा जा सकता।

'आँसू' इस प्रकार की प्रेमभावनाओं की चरम परिणति है। 'आँसू' और 'लहर' ने 'प्रसाद'जी की विकासोन्मुखी काव्यधारा को पर्याप्त पुष्ट किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आँसू का सम्पूर्ण महत्त्व कवि के करुणा-कलित हृदय से मुखरित विकल रागिनी में देखा जा सकता है। यह कवि के लौकिक प्रेम की व्यक्तिगत विरहानुभूति का प्रतिपादन करती है। असफल प्रेम के अवसाद की पीड़ा कवि के मानसिक जगत् पर छाती चली गयी और अनुकूल परिस्थितियों को पाकर वह आँसू बन बरस पड़ी।

'आँसू' हिन्दी का एक श्रेष्ठ विरह काव्य है, जिसमें विषय और शिल्प का मणि-कांचन योग प्रस्तुत हुआ है। सच पूछा जाय तो 'आँसू' छायावाद का प्रतिनिधित्व करने वाली एक प्रमुख रचना है। कवि की मानसिक पीड़ा ने कल्पना-पट पर स्मृति की रेखाओं से न जाने कितने मधुर चित्रों का निर्माण किया है। स्मृति की ये रेखाएँ कहीं असीम वेदना से भरे हुए प्रेमी के हृदय को आकार प्रदान करती हैं तो कहीं प्रेमास्पद की निर्ममता का उद्घाटन करती हैं। विरह-पीड़ा को अत्यन्त तीव्र बनाने के लिए मिलन सम्बन्धी कामोत्तेजक चित्रों का निर्माण भी किया गया है। 'आँसू' में सौन्दर्यानुभूति का प्रतिमान बहुत उदात्त है—

लावण्य-शैल राई-सा
जिस पर वारी बलिहारी
उस कमनीय कला की
सुषमा थी प्यारी-प्यारी।

'आँसू' का निराशावादी स्वर 'लहर' में नहीं सुनाई पड़ता। 'आँसू' में हलचल और उन्माद है, अतृप्ति और पिपासा है किन्तु 'लहर' में शांति है। आँसू बरसाने के बाद कवि का हृदय यहाँ हल्का हो गया है। इसमें प्रेम के प्रतिपादन के लिए उपालम्भ नहीं, बल्कि त्यागमय आत्म-समर्पण है—

पागल रे! वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब
आँसू के मन से गिनकर
यह विश्व लिये है ऋण उधार
तू क्यों फिर उठता है पुकार?
मुझको न मिला रे कभी प्यार।

'जाग री' लहर की उत्कृष्ट रचनाओं में से एक है। इसकी सर्वप्रमुख विशेषता प्रकृति के मानवीकरण और सुन्दर बिम्ब-योजना में निहित है। कवि प्रकृति के साथ एकान्तभाव से तादात्म्य स्थापित करता है। प्रस्तुत कविता में मानवीकरण के द्वारा जहाँ इसकी कलात्मकता में वृद्धि हुई है, वहीं रसानुभूति कराने में भी पर्याप्त सहायता मिली है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ प्रकृति को एक नायिका के रूप में चित्रित कर सजीव बिम्बों की सृष्टि की गयी है। प्रातःकाल पनघट पर जल भरने वाली पनिहारिन के रूपक द्वारा आकाश में डूबने वाले तारों तथा उदित होने वाली उषा का स्पष्ट एवं काव्यात्मक बिम्ब खीचा गया है। एक साथ ही अनेक सांकेतिक बिम्बों की कलात्मकता भी द्रष्टव्य है। पनघट शब्द की अर्थव्यंजना अत्यन्त विस्तृत है। इसके उच्चारण मात्र से जल भरने के लिए आयी हुई नवयुवतियों की भीड़-भाड़, एक साथ अनेक घड़ों को जल में डुबाना, परस्पर हास-परिहास से मुखरित होते हुए पनघट का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। 'कुल-कुल' शब्द ध्वन्यात्मक बिम्ब की रचना में सहायक है। इसके द्वारा प्रातःकाल में पक्षियों के कलरव को ध्वनित किया गया है। 'किसलय का अञ्चल डोल रहा' कहने में जो सांकेतिकता है, वह एक रोमानी वातावरण की सृष्टि करता है। किसलय का नवकोमल अरुणांचल लहराती हुई लतिका ने भी मानो अपनी 'मुकुल-गागरी' को 'मधु-रस' से भर लिया। अन्तिम छन्द में शृंगारसज्जित प्रकृतिवधू का मादक चित्र प्रस्तुत किया गया है। उषा की ललाई, अधरों का अमन्द राग, लतिका की हरीतिमा एवं अलक-पाश की कालिमा आदि विविध रंगों के चयन और उनके उचित सामंजस्य से बिम्ब अत्यंत सजीव हो गया है।

'मेरे नाविक' शीर्षक कविता 'प्रसाद'जी की बहुचर्चित कविता है। कतिपय आलोचकों ने पलायनवाद को भी छायावाद की एक प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार कहते हुए प्रस्तुत कविता के द्वारा उन्होंने अपने मंतव्य को पुष्ट करने का प्रयास किया है। इसमें सन्देह नहीं कि इस रचना में जीवन के कोलाहलमय वातावरण से ऊबे हुए व्यक्ति का निराशावादी स्वर मुखरित हुआ है जो एक ऐसे आदर्शमय कल्पनालोक में जाने की बात करता है जहाँ अवनी का कोलाहल नही, शान्ति और विश्रान्ति है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नही कि कवि की दृष्टि लौकिकता का स्पर्श ही नहीं करती। 'विश्व चित्र-पट चल माया में' जैसी पंक्ति से स्पष्ट है कि कवि संसार की यथार्थता की उपेक्षा नहीं कर पाता।

'अरी वरुणा की शान्त कछार' की काव्यात्मकता के साथ ही उसका ऐतिहासिक महत्त्व भी है। प्रस्तुत कविता सारनाथ स्थित मूलगंध कुटी विहार के उद्घाटन-समारोह में पढ़ने के लिए लिखी गयी थी। स्थान-महिमा के चित्रण के बाद कवि बुद्ध के जीवन पर संक्षिप्त प्रकाश डालता है। ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् गौतम बुद्ध का प्रथम उपदेश इसी पावनभूमि पर हुआ था। सम्पूर्ण कविता में प्रशान्त वातावरण और अवसाद का हल्का स्वर सुनाई पड़ता है। दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति के स्थलों पर भाषा में बौद्धधर्मसंबंधी कुछ शब्दों के आ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाने से, उसका प्रवाह कुछ अवरुद्ध-सा हो गया है किन्तु प्रायः सहजता बनी हुई है। 'छोड़कर पार्थिव भोग विभूति' वाले छन्द में करुणामिश्रित अवसाद की रेखाएँ गाढ़ी हो गई हैं।

'लहर' की अंतिम रचनाओं में भी यही ऐतिहासिक स्वर प्रधान है। 'अशोक की चिन्ता', 'शेरसिंह का शस्त्रसमर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि' तथा 'प्रलय की छाया' मुक्त छन्द में लिखी हुई ऐसी रचनाएँ हैं जिनमें कवि ने अपने अतीत का सिंहावलोकन किया है। इनमें 'प्रलय की छाया' की कमला 'प्रसाद'जी की महती उपलब्धि है। 'पेशोला की प्रतिध्वनि' छोटी रचना होने के कारण अधिक संगठित है। उसमें विषय की एकोन्मुखता विद्यमान है। भावों का सहज प्रवाह कविता के कलात्मक सौन्दर्य को बढ़ा देता है। प्रताप को इस बात की चिन्ता परेशान कर रही है कि मेरे बाद मेवाड़ की गौरव-रक्षा का भार कौन लेगा? इसी मानसिक यंत्रणा में प्रताप की पीड़ा को निम्न पंक्तियों में आकार प्रदान किया गया है—

कौन लेगा भार यह ?
जीवित है कौन ?
साँस चलती है किसकी
कहता है कौन ऊँची छाती कर, मैं हूँ—
—मैं हूँ—मेवाड़ में,
अरावली शृंग-सा समुन्नत सिर किसका ?
बोलो, कोई बोलो—अरे क्या तुम सब मृत हो ?

× × ×

आज भी पेशोला के
तरल जल-मण्डलों में
वही शब्द घूमता-सा
गूंजता विकल है;
किन्तु वह ध्वनि कहाँ ?

'श्रद्धा' कई दृष्टियों से कामायनी का महत्त्वपूर्ण सर्ग है। उसमें अपूर्व काव्य-वैभव के साथ ही श्रद्धा के बाह्य और आंतरिक सौन्दर्य की ऐसी मनोरम झाँकी प्रस्तुत की गई है जिसे देखकर द्रष्टा का मन अभिभूत हो जाता है। श्रद्धा के प्रभुतासंपन्न सौन्दर्य के अभिराम इन्द्रजाल में मनु के नयन उलझते ही चले गये। इस प्रकार दोनों का परिचय हुआ और यहीं से कथा का प्रारंभ होता है। 'चिन्ता' और 'आशा' सर्गों की सृष्टि पृष्ठभूमि रूप में की गई है किन्तु श्रद्धा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्ग में मनु-श्रद्धा के मिलन द्वारा मनोरम कथा का सूत्रपात अत्यन्त नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है। श्रद्धा भारतीय नारी की प्रतीक है जिसे कामायनीकार ने 'हृदय की अनुकृति वाह्य उदार' कह कर उसकी चारित्रिक विशेषता को उद्घाटित किया है। श्रद्धा का व्यक्तित्व इतना महान् और गौरवशाली है कि उसके समक्ष मनु विवश और निरुपाय हो जाते हैं। श्रद्धा का मातृत्व अबोध मनु का नेतृत्व करता है। वह मनु के निराश जीवन में आशा संचार करती है और उन्हें पुनः कर्म करने की ओर उन्मुख करती है। विरस पतझड़ में सुकुमार वसंत-दूत की भाँति मनु के जीवन में श्रद्धा का आगमन अत्यंत मोहक था।

श्रद्धा मनु के भटकते हुए जीवन का सूत्र-संचालन कर उसे उद्वेगरहित बनाने का प्रयास करती है। श्रद्धा के मांसल अंगों से तरंगायित होनेवाले सौन्दर्य को आकार प्रदान करने में कवि-कल्पना कुण्ठित-सी हो गयी है। उसके अनिर्वचनीय सौन्दर्य की रचना करने के लिए कवि ने परमाणु-पराग का सहारा लेकर उसे मधु का आधार प्रदान किया है—

कुसुम कानन अंचल में मन्द
पवन प्रेरित सौरभ साकार,
रचित परमाणु पराग शरीर
खड़ा हो, ले मधु का आधार।
और पड़ती हो उस पर शुभ्र
नवल मधु राका मन की साध;
हँसी का मद विह्वल प्रतिविम्ब
मधुरिमा खेला सदृश अबाध।

अनंत सौन्दर्य की आभा से मंडित श्रद्धा मनु की निवृत्तिमूलक विचारधारा का विरोध कर उन्हें संसार की ओर प्रवृत्त करती है। दुःख, चिन्ता, निराशा तथा विविध जटिलताओं का अनुमान करके संसार से पलायन करना अकर्मण्यता है। यह संसार महाचिति के लीलामय आनन्द का व्यक्त स्वरूप है, विश्व के समग्र प्राणी उसी में अनुरक्त हैं। वह क्षेम और प्रेम तथा सुख और दुःख में सामंजस्य स्थापित करती हुई इनके सापेक्षिक महत्त्व का प्रतिपादन करती है—

काम मंगल से मंडित श्रेय
सर्ग इच्छा का है परिणाम।

सुख और दुःख की विषमता से सारा संसार पीड़ित है। इनके सामंजस्य द्वारा समरसता का संचार कर श्रद्धा मनु को प्रेम का संदेश देती है। निरुपाय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन को निराशा और असफलता का पर्याय स्वीकार कर लेने वाले मनु को श्रद्धा मर कर भी जीवन के दाँव को जीतने की अपूर्व प्रेरणा देती है। 'तप नहीं केवल जीवन सत्य' के उद्घोष द्वारा श्रद्धा ने तप और त्याग की निष्क्रियता के स्थान पर जीवन के भोग को महत्त्व प्रदान किया है। 'कर्म का भोग, भोग का कर्म' यही 'जड़ का चेतन आनन्द' है। विश्वमानवता का पाठ पढ़ाती हुई श्रद्धा लोक-कल्याणार्थ मनु को आत्मसमर्पण करती हुई मानव-सृष्टि के विकास के लिए उनका आह्वान करती है। विधाता के मंगलमय वरदान की ओर वह मनु का ध्यान आकृष्ट करती है जिसमें शक्तिशाली होकर विजयी बनने का आशीर्वाद निहित है। इतना ही नहीं, उच्चादर्शों का प्रतिपादक श्रद्धा का उपदेश संपूर्ण मानवता को विजयिनी बनाने के लिए आकुल है। इस प्रकार कामायनीकार ने श्रद्धा के द्वारा एक नवीन संस्कृति के विकास का मंत्र दिया है जिसके लिए पुरातनता के निर्मोक को उतार कर नवीन मानव-मूल्यों को ग्रहण करना आवश्यक है।

'लज्जा' कामायनी का सर्वाधिक कलात्मक सर्ग है और कामायनीकार की चरम उपलब्धि भी। लज्जा जैसे सूक्ष्म मनोभाव की एक स्थान पर ऐसी व्यापक एवं सूक्ष्म व्यंजना विश्व-साहित्य में भी दुर्लभ है। 'कनक' किरण से अंतराल में लुक-छिप कर चलनेवाले 'लाज भरे सौन्दर्य' की विस्तृत व्याख्या कर कवि ने अपनी मनोवैज्ञानिक पकड़ का परिचय दिया है। मनु को आत्मसमर्पण करने के बाद श्रद्धा की वासना जाग्रत हुई, किन्तु लज्जा की वर्जना भरी मधुरानुभूति ने उसके सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया। कवि ने लज्जा की प्रकृति, उसके प्रभाव तथा क्रिया-व्यापार का बड़ा ही सूक्ष्म वर्णन किया है। लज्जा के प्रादुर्भाव का अंकन कितना स्वाभाविक है—

छूने में हिचक, देखने में
पलकें आँखों पर झुकती हैं;
कलरव परिहास भरी गूँजें
अधरों तक सहसा रुकती हैं।

प्रिय के सौन्दर्य से आकर्षित मुग्धा पहले उसका स्पर्श करने में हिचकती है; उसकी आँखों में डूब जाना चाहती है पर लज्जा के कारण पलकें झुक जाती हैं। वह केवल प्रिय का सान्निध्य ही नहीं चाहती, उससे हास-परिहास कर मन की सरसता को व्यक्त करना चाहती है किन्तु मन की बात ओठों तक आकर रुक जाती है। इसी प्रकार लज्जा के प्रभाव और क्रिया-व्यापार की व्यंजना भी कितनी मार्मिक है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लाली बन सरस कपोलों में
आँखों में अंजन-सी लगती;
कुञ्चित अलकों-सी घुँघराली
मन की मरोर बन कर जगती।
चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली;
मैं वह हलकी-सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।

प्रथम छन्द में लज्जा के प्रभाव का अंकन किया गया है, तो दूसरे में क्रिया-व्यापार और प्रभाव दोनों का रमणी के कपोलों की सरसता, उनकी मांसलता, गोराई, स्निग्धता आदि में निहित है। इस प्रकार के कपोलों पर लज्जा की रेखाएँ बहुत ही स्पष्ट उभरती हैं। आँखों में अंजन लगाने से जहाँ आँखों का सौन्दर्य निखर आता है वहीं एक प्रकार की शीतलता की अनुभूति भी होती है। लज्जा की अनुभूति के समय भी चन्दन का-सा शीतल प्रभाव पड़ता है तथा इस अवस्था में लज्जा मन के भीतर घुँघराली कुञ्चित अलकों की भाँति अनेक मरोड़ उत्पन्न करती है।

दूसरे छन्द में कवि लज्जा का स्वरूप-विश्लेषण करते हुए उसके क्रिया-व्यापार का उल्लेख करता है। किसी किशोरी के सौन्दर्य में बाल-सुलभ चंचलता बराबर विद्यमान रहती है जो लज्जा के अभाव में उसके यौवन को अरक्षित बना देती है। सुन्दरी का यौवन उसकी अमूल्य निधि है जिसकी रक्षा लज्जा ही कर सकती है। लज्जा के बिना निर्लज्ज नारी के व्यभिचारिणी बनने में विलम्ब ही कहाँ लगता है। 'हलकी-सी मसलन' में निहित व्यंजना अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है—यदि किसी के कान मसल दिये जायँ तो लज्जा की ललाई कर्णमूलों तक फैल जाती है।

'लज्जा' सर्ग की कलात्मकता में सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है उसका मानवीकरण। मानवीकरण यद्यपि प्रसादजी की प्रमुख विशेषता है और पूरी कामायनी में इसका समुचित निर्वाह भी किया गया है किन्तु 'लज्जा' सर्ग का मानवीकरण अपनी अलग विशेषता रखता है। श्रद्धा और लज्जा दोनों अमूर्त भाव हैं किन्तु इस सर्ग में दोनों को नारी के रूप में मूर्तिमान किया गया है। लज्जा को यहाँ श्रद्धा की छाया प्रतिमा बताया गया है। लज्जा के उदय होते ही श्रद्धा की सारी स्वतन्त्रता छिन जाती है और उसे अपनी परवशता का आभास होता है। लज्जा नामक मनोभाव कायिक विकारों के रूप में आकार पाता है और उसके प्रकट होने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा विलुप्त होने में कुछ भी विलम्ब नहीं लगता। इसकी मनोवैज्ञानिक एवं काव्यात्मक व्यंजना कितनी सूक्ष्म है—

मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद निखरता ज्यों;
सुरभित लहरों की छाया में
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों।

लज्जा की अनुभूति के समय रमणी का पानी-पानी हो जाना, उसके कोमल अंगों का मोम की भाँति गल जाना तथा शरीर का छुई-मुई की भाँति सिमट जाना कितना स्वाभाविक है। 'लज्जा' सर्ग की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें सौन्दर्य, यौवन और आनन्द का अपूर्व सामंजस्य प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक युवती के जीवन में यह अवस्था आती है जब उसे हृदय और बुद्धि के परिप्रेक्ष्य में अपने यौवन का मूल्यांकन करना पड़ता है। कवि ने एक सामान्य नारी की समग्र कोमल अनुभूतियों को रूप-यौवनसम्पन्न श्रद्धा पर आरोपित कर उसे अपूर्व आनन्द का कारण बताया है। लज्जा की प्रकृति एवं प्रभाव-व्यंजना के अतिरिक्त सौन्दर्यांकन में भी कवि का शिल्पकार जागरूक है। उसने सौन्दर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान कहकर उसके निष्कलुष एवं उदात्त स्वरूप की प्रतिष्ठा की है। किसी युवती में लज्जा के उत्पन्न होते ही परिवर्तन की रेखाएँ स्पष्ट होने लगती हैं। उसकी समग्र चंचलता गम्भीरता में परिवर्तित हो जाती है तथा तरल हँसी मुसकान बनकर रह जाती है। आँखों की भाव-भंगिमा एक मोहक आकर्षण उत्पन्न करती है। सब मिलाकर कामायनी का 'लज्जा' सर्ग एक कुशल कलाकार की मोहक सृष्टि का परिचायक है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' छायावाद के प्रतिनिधि कवि हैं। ये अपने जीवन और साहित्य, दोनों क्षेत्रों में समान रूप से क्रान्तिकारी थे। निराला दृढ़-प्रतिज्ञ एवं विद्रोही मनोवृत्तिवाले व्यक्ति थे। उनका सामाजिक जीवन अपने-आप में पर्याप्त सरल एवं निष्कलुष था। उन्होंने परिवार की जिस कटुता को झेला तथा मृत्यु की जिस विनाशलीला को देखा था, उससे यदि जीवन के अन्तिम क्षणों में उनका मानसिक सन्तुलन कुछ बिगड़ने लग गया हो तो इसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। निराला को विक्षिप्त कहनेवाले लोगों ने सहानुभूतिपूर्वक वास्तविक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में उनके जीवन को देखने का प्रयास नहीं किया। 'निराला'जी ने जीवन भर संघर्ष किया किन्तु पराजय, असफलता और असम्मान ही हाथ लगा। उदारमना होने के साथ ही 'निराला'जी बड़े स्वाभिमानी भी थे जिससे कुछ लोगों ने भ्रमवश उन्हें अहंकारी मान लिया। वास्तविकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह है कि उनकी विद्रोही एवं क्रान्तिकारी मनोवृत्ति ने उनके स्वाभिमान को अत्यन्त सुदृढ़ बना दिया था।

'निराला'जी बाहर से जितने सुदृढ़ थे, भीतर से उतने ही साफ दिल भी— छल-कपट से दूर तथा कुप्रवृत्तियों से अप्रभावित। 'निराला' का क्रान्तिकारी और निर्भीक व्यक्तित्व तथा अक्खड़ स्वभाव, सिर से पाँव तक मस्तमौला कबीर की याद दिलाता है। उनके साहित्य में इसी ओजस्वी व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। 'निराला' के व्यक्तित्व में कुछ ऐसी विशिष्टताओं का समाहार हो गया है जिनके कारण वे हिन्दी जगत् में अपना अलग महत्त्व रखते हैं। ये लीक पर चलनेवाले नहीं, बल्कि लीक का निर्माण करनेवाले अत्यन्त समर्थ पुरुष थे। जिस बात का निश्चय कर लिया, उससे कभी विचलित नहीं होते थे।

साहित्य के क्षेत्र में 'निराला' का आगमन अत्यन्त तीव्रगति से हुआ। उनकी प्रथम रचना (जूही की कली) ही अभिव्यंजना-कौशल की दृष्टि से इतनी सशक्त थी कि हिन्दी संसार में उन्होंने अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया। आलोचकों की दृष्टि उनकी ओर उन्मुख हुई और उन्हें शंका की दृष्टि से देखा जाने लगा। 'निराला'जी ने शास्त्रीय मान्यताओं की उपेक्षा करते हुए साहित्य में एक नवीन मार्ग का अन्वेषण किया। वे एक युगद्रष्टा कवि थे और इसीलिए उनके काव्य में छायावाद के साथ ही प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की प्रवृत्तियाँ भी पायी जाती हैं। नयी कविता का स्वरूप भी निराला के काव्य में विद्यमान है। उन्होंने मानवतावादी चेतना को अपने काव्य का प्रमुख आधार बनाया और इस दृष्टि से वे छायावादी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि कहे जा सकते हैं। 'निराला'जी जीवन भर संघर्ष करते रहे और साहित्य-जगत् में नित्य नवीन खोज और आविष्कार के कारण ही वे आनेवाले साहित्यकारों के लिए प्रेरणा-स्रोत बने। 'कुकुरमुत्ता', 'कुल्ली भाट' और 'चतुरी चमार' उनके नवीन प्रयोगों के ज्वलंत प्रमाण हैं। इनके अतिरिक्त मुक्त छन्दों के प्रयोग द्वारा इन्होंने काव्य की अधुनातन प्रवृत्तियों का मार्ग प्रशस्त किया। 'निराला' की भाषा का ओजस्वी एवं उदात्त स्वरूप अन्य हिन्दी कवियों से सर्वथा भिन्न है। मानव एवं मानवेतर जगत् के प्रत्येक क्षेत्र में वे नित्य नवीन परिवर्तन की आकांक्षा करते हैं—

नव गति, नव लय, ताल-छन्द नव,
नवल कण्ठ, नव जलद मन्द्र रव,
नव नभ के नव विहग-वृन्द को
नव पर, नव स्वर दे !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'निराला' के काव्य में वह सहज गुण विद्यमान है जो मानव-जीवन को जीवन्त प्रेरणा प्रदान करता है। समास-पद्धति पर आधृत उनका शब्द-चयन इतना संतुलित है कि लय और ताल के द्वारा ललित ध्वनि-बिम्बों का निर्माण होता चलता है। जहाँ कहीं वे शृंगार का वर्णन करते हैं, वहाँ भी शब्दसमूहों से ओजस्वी ध्वनि प्रतिध्वनित होती है। शृंगारिक परिप्रेक्ष्य में अभिसारिका आत्मा का चित्र द्रष्टव्य है—

मौन रही हार,
प्रिय पथ पर चलती सब कहते शृंगार।
कण-कण कर कंकण; प्रिय किण-किण रव किंकिणी,
रणन-रणन नूपुर, उर लाज लौट रंकिणी,
और मुखर पायल स्वर करे बार-बार।

इसी प्रकार इन्होंने 'यामिनी जागी' शीर्षक कविता में नायिका के मुखमण्डल की तेजस्विता को दिनकर की आभा से उपमित किया है—

खुले केश अशेष शोभा भर रहे
बादलों में घिर अपर दिनकर रहे,
ज्योति की तन्वी तड़ित् द्युति ने क्षमा माँगी।

'निराला'जी की कविता उनकी जीवन-साधना का प्रतिफल है। इसीलिए उनके काव्य में जीवन के बाह्य एवं आन्तरिक रूपों के अनेक चित्र विविध शैलियों में रूपायित हुए हैं। प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों के साथ आधुनिक समाज के नवीन जीवन-मूल्यों का विराट् चित्रफलक प्रस्तुत कर 'निराला'जी ने हिन्दी कविता को बहुत आगे बढ़ा दिया है। 'निराला'जी के काव्य में नैतिकता के प्रति एक आग्रह भी दिखाई पड़ता है जिसके फलस्वरूप यथार्थवादी बौद्धिकता के साथ ही उनमें आदर्शवादी भावुकता का एक विशिष्ट संतुलन भी पाया जाता है। 'निराला'जी ने जीवन में न जाने कितने अन्तर्विरोधों को बड़े ही सहज ढंग से झेला है और उनके काव्य में भी वे प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। उनका काव्य प्रगति और विकास का परिचायक है, साथ ही उनके मन पर भारतीय जीवनदर्शन का अमिट प्रभाव है। करुणा, प्रेम और संवेदना को उन्होंने अपनी कविता में विशेष महत्त्व दिया है। अपने आस-पास समाज में बिखरे हुए पददलित और पीड़ित प्राणियों का दुःख-दैन्य देखकर 'निराला' की संवेदनशील करुणा कविता में साकार हो गयी है। 'विधवा', 'भिक्षुक' जैसी कविताएँ इसकी परिचायक हैं। 'निराला' का भाव-क्षेत्र इतना व्यापक है कि उनकी कविताओं में राष्ट्रीय भावना से लेकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यंग्य-विनोद तक की सहज व्यंजना पायी जाती है। सांस्कृतिक जागरण के उद्घोष में ओजस्विता है तो प्रार्थनापरक गीतों में एक प्रकार की दीप्ति और भास्वरता। उनके व्यंग्य इतने चुटीले और मार्मिक होते हैं कि अपने पैने आघात से वे लक्ष्य का मर्म वेध डालते हैं। पूँजीपतियों, वकीलों और धार्मिक आडम्बर से युक्त व्यक्तियों पर किये गये उनके व्यंग्य अपना अमिट प्रभाव छोड़ते हैं। परवर्ती रचनाओं में व्यंग्य का स्वर कुछ मंद पड़ गया है और करुण भावों की प्रधानता होने लगी है।

'जागो फिर एक बार' भारत के अतीत गौरव का स्मरण दिलाने वाली राष्ट्रीय भावना से प्रेरित एक ओजस्वी कविता है। कवि ऐसा अनुभव करता है कि दिन-रात क्रमशः पल-पल करके बीतते जा रहे हैं किन्तु मानवीय संवेदना अभी भी सुषुप्त पड़ी है। समय तीव्र गति से आगे बढ़ता जा रहा है और हमारे मन में चेतना का उन्मेष ही नहीं हो पा रहा है। सांस्कृतिक जागरण की इस पावन वेला में कवि देशवासियों को उद्बोधित करता है। कवि ने प्रिय को जगाने वाली विरहिणी के माध्यम से इस सांस्कृतिक जागरण को शृंगारिक परिप्रेक्ष्य भी प्रदान किया है। विरहिणी को समग्र प्रकृति में चेतना का नवोन्मेष दिखलायी पड़ता है किन्तु उसका प्रिय अभी निद्रामग्न है।

'संध्या सुन्दरी' में प्रकृति का अलंकृत रूप अंकित किया गया है। सन्ध्या का मानवीकरण चित्र को जीवंतता प्रदान करता है। सूर्यास्त के बाद से अर्द्धरात्रि तक के नीरव वातावरण को अत्यंत स्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्त करने में 'निराला'जी ने अपूर्व कौशल का परिचय दिया है। प्रत्येक पंक्ति में वातावरण की सजीवता दृष्टिगोचर होती है। सायंकाल मेघमय आकाश से उतरने वाली सन्ध्या सुन्दरी कवि को परी-सी जान पड़ती है और वह उसके स्वर्गीय सौन्दर्य को निहारने में निमग्न हो जाता है। प्रस्तुत कविता में सुन्दर प्राकृतिक बिम्बों की योजना रमणीय है।

यद्यपि विद्रोह और विप्लव की भावनाओं को व्यक्त करने वाली अनेक कविताएँ 'निराला'जी ने लिखी हैं किन्तु इस दृष्टि से 'बादल राग' उनकी अत्यंत सशक्त रचना है। बादल को अनेक रूपों में चित्रित किया गया है—कहीं विप्लवकारी, कहीं आतंकवादी तथा कहीं क्रांतिकारी के रूप में। बादल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि परोपकार के लिए वह अपना सर्वस्व लुटाकर अकिंचन हो जाता है—रिक्त हो जाता है किन्तु जड़-चेतन सबको तृप्त कर देता है। 'निराला' का व्यक्तित्व भी बादल की विराटता में देखा जा सकता है। इसका काव्यात्मक महत्त्व अक्षुण्ण है। नाद-व्यंजना का इतना सुन्दर रूप बहुत कम स्थलों पर देखने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को मिलता है। नाद-व्यंजना के आधार पर चित्रित इन प्राकृतिक बिम्बों में बादलों की गुरु-गंभीर गर्जना सर्वत्र विद्यमान है। 'झूम-झूम', 'गरज-गरज' 'झर-झर-झर', 'तरु-मर्मर', 'खल-खल' तथा 'कुल-कुल कल-कल कल-कल' आदि शब्द-समूहों के द्वारा विविध ध्वनियों में सामंजस्य स्थापित किया गया है।

'विधवा' हिन्दू समाज में सबसे अभिशप्त एवं उपेक्षित प्राणी है। जीवनभर विविध यातनाओं की ज्वाला में जलती रहने के कारण उसका जीवन जर्जर हो जाता है। 'निराला'जी ने आरम्भ मे ही पददलित और उपेक्षित नारी के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति व्यक्त की है। 'विधवा' शीर्षक कविता में हिन्दू विधवा का जो चित्र खींचा गया है उसमें मानो विश्व की समग्र करुणा घनीभूत हो गई है। कवि ने तपस्विनी का जीवन व्यतीत करने वाली विधवा को इतना सम्मानित किया है कि उनकी दृष्टि में वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सदृश है। इससे उसकी सौम्यता और पवित्रता का आभास मिलता है। दीपशिखा की भाँति अनवरत दुःख की ज्वाला में जलती हुई शान्त है। उसका अशान्त होना समाज को असह्य है। 'टूटे तरु की छुटी लता' कहने से अनेक कारुणिक भावों की व्यंजना होती है। मृत पति के लिए टूटे तरु का अप्रस्तुत अत्यन्त सार्थक है। 'छुटी लता' में विधवा की निराश्रयता का बोध कराया गया है। 'व्यथा की भूली हुई कथा' कहकर तो मानो उसे करुणा की प्रतिमूर्ति ही बना दिया गया है। कविता बड़ी ही संवेदन-शील एवं भावपूर्ण है।

'राम की शक्ति-पूजा' ओजगुण-संपन्न एक सशक्त कविता है। आधुनिक युग में ऐसी उदात्त रचना का दर्शन नहीं होता। कथा पौराणिक है किन्तु उसे सर्वथा नये परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया गया है। राम को मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में न देखकर एक सामान्य मानव के रूप में चित्रित किया गया है। रावण पर विजय पाने की ओर से निराश होकर राम अधीर हो जाते हैं तथा एक साधारण व्यक्ति की भाँति उनकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। अन्त में उन्हें विवश होकर शक्ति-पूजा करनी पड़ती है। राम की अधीरता, निराशा और ग्लानि में 'निराला' की अपनी अधीरता, निराशा और ग्लानि निहित है। जीवन भर विरोध झेलते हुए संघर्ष करनेवाले 'निराला' का स्वर राम के निम्न स्वर में घुल-मिल कर एक हो गया है—

धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।

रावण अन्याय का प्रतीक है जिस पर विजय प्राप्त करने के लिए राम कृत-संकल्प हैं किन्तु उन्हें महान् आश्चर्य है कि दुर्गा स्वयं अत्याचार का साथ दे रही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। इसीलिए उन्हें भी आराधना करनी पड़ी।

'राम की शक्ति-पूजा' में कविता का उत्कृष्ट स्वरूप, महाकाव्योचित उदात्त भावना, सुन्दर प्रतीक विधान, ध्वनि-व्यंजना की सूक्ष्मता तथा बिम्ब-विधायिनी भाषा का ओजस्वी स्वर—ये प्रमुख विशेषताएँ पायी जाती हैं। रस-परिपाक की दृष्टि से शृंगार और वीर की व्यंजना की गयी है। सम्पूर्ण कविता भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से अत्यन्त सजीव है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास आदि प्राचीन अलंकारों की छटा दिखाई पड़ती है। नवीन अलंकारों में नाद-व्यंजना, मानवीकरण एवं विशेषण विपर्यय का भी प्रयोग हुआ है। किन्तु बिम्बात्मकता इस कविता की प्रमुख विशेषता है जिसके लिए उसी प्रकार की प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग हुआ है। कविता के आरम्भ में भाषा की समास-पद्धति द्रष्टव्य है। संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त भाषा का स्वरूप जटिल हो गया है, तथापि बिम्ब सफल हैं। पद-शय्या, शब्द-समूह, भाषा आदि सभी में गरिमामयी भास्वरता एवं उदात्तता के दर्शन होते हैं। नाटकीय शैली और अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण कविता के महत्त्व को और अधिक बढ़ा देते हैं। कलात्मक होने के साथ ही यह एक महत् उद्देश्य से प्रेरित है।

'गहन है यह अन्ध कारा' शीर्षक कविता में निराशा का स्वर मुखर है। उसे ऐसा लगता है कि समग्र विश्व अन्धकार से युक्त एक कारागार के सदृश है जिसमें हठात् उसे बन्द कर दिया गया है। जड़ता की दीवार उसे चारों ओर से घेरे हुए है। प्रकाश का नाम तक नहीं है—न कहीं सूर्य है, न चन्द्रमा, न तारे। उसे कहीं भी आशा की प्रकाश-किरणों के दर्शन नहीं होते और उस घुटनशील वातावरण से निकलने के लिए वह छटपटाने लगता है। कविता की पृष्ठभूमि आध्यात्मिक है। प्रतीकात्मक भाषा के माध्यम से कवि अपने मन्तव्य को स्पष्ट करता है। अन्तिम छन्द में दार्शनिकता और स्पष्ट हो जाती है। कवि अपने आराध्य से निवेदन करता है कि मुझमें ऐसी चेतना का संचार करो ताकि मैं अपने लक्ष्य को पा सकूँ जिसे इस संसार में आकर मैं भूल गया हूँ।

'स्नेह निर्झर बह गया है'—यह कविता भी इसी भावभूमि पर आधारित है। कवि की निराशा इतनी घनीभूत हो गयी है कि उसे अपना जीवन ही निरर्थक लगने लगता है। 'निर्झर', 'पल्लवहीन आम की डाल' आदि विविध अप्रस्तुतों के माध्यम से वह जीवन के निरर्थक होने की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करता है। जीवन उस निर्झर के समान है जिसका (प्राणतत्त्व) सरस जल सूख चुका है और रेत-ही-रेत रह गयी है। कवि इन प्राकृतिक चित्रों में अपने जीवन का प्रतिबिम्ब देखता है। अन्तिम पंक्तियों में निराशा का स्वर सघन हो गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सरोज-स्मृति' हिन्दी का सर्वश्रेष्ट शोक-गीत है जो कवि की युवा-कन्या सरोज की मृत्यु पर लिखा गया है। कवि के हृदय की सारी संवेदना करुणा के रूप में प्रवाहित हो गयी है। इस कविता में कवि ने अपने जीवन के कटु सत्यों तथा व्यावहारिक चिन्तनों को रूपायित किया है। अपनी युवा-कन्या का सौन्दर्य चित्रण जिस तटस्थता एवं ईमानदारी के साथ 'निराला'जी ने किया है, वैसा दूसरा कवि नहीं कर सकता। 'सरोज-स्मृति' में वात्सल्य का स्वरूप इतना उदात्त एवं महान् है कि पाठकों का हृदय करुणा से विह्वल हो जाता है। सरोज को चीनांशुक न पहना पाने तथा उसका समुचित उपचार न कर पाने की आत्मपीड़ा 'निराला' के हृदय को मथने लगती है। उन्होंने अपनी सही अनुभूतियों को यथार्थ अभिव्यक्ति दी है।

सौन्दर्य 'पन्त'जी की कविता का केन्द्रबिन्दु है, चाहे वह प्राकृतिक हो अथवा मानवीय। मानवीय सौन्दर्य के बाह्यस्वरूप के उद्घाटन में उनकी मनोवृत्ति विशेष रूप से रमी है यद्यपि आत्मिक सौन्दर्य की ओर भी इनकी दृष्टि बराबर रही है। सौन्दर्य-निरीक्षण के गहरे अभ्यास के कारण इनका तीव्र सौन्दर्य-बोध बहुत उदात्त बन गया है। सौन्दर्य-साधना ही इनके काव्य का प्रमुख प्रतिपाद्य है जिसमें 'सत्य' और 'शिव' का सहज समावेश हो जाने से उसका उत्कर्ष अधिक बढ़ गया है। 'वीणा', 'ग्रन्थि' और 'पल्लव' की रचनाओं में प्राकृतिक सौन्दर्य का स्वरूप अधिक निखरा हुआ है तथा 'गुंजन' की रचनाओं मे कवि मानवीय सौन्दर्य का भी पक्षधर बन गया है। 'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया—बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन' का पूर्वाग्रही स्वर 'मानव तुम सबसे सुन्दरतम' के रूप में परिवर्तित हो गया। 'स्वर्ण-किरण' और 'स्वर्ण धूलि' में कवि की दार्शनिकता ने उसे सत्यान्वेषी बना दिया है। उसकी धारणा है कि सौन्दर्यानुभूति में ही सांस्कृतिक एवं मानवतावादी चेतना की समुचित अभिव्यक्ति संभव है।

बाह्य सौन्दर्य-चित्रण के साथ ही 'पंत'जी ने आन्तरिक सौन्दर्य के उद्घाटन में भी अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है। रहस्यमय सौन्दर्य को अभिव्यक्त करते समय कवि अत्यंत जागरूक दिखाई पड़ता है। 'पंत'जी ने प्रेम और सौन्दर्य में सामंजस्य स्थापित करते हुए मानव-चेतना को प्रेम की छाया, दिव्य प्रेम को देही एवं सुन्दरता को उसकी सतरंगी काया कहा है—

यह सौन्दर्य चेतना उसके अमर प्रेम की छाया,
दिव्य प्रेम देही, सुन्दरता उसकी सतरँग काया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार कवि का सौन्दर्यबोध जितना सूक्ष्म है, उतना ही व्यापक भी। इनकी बाद की रचनाओं में भी प्रकृति-प्रेम का स्वर किसी-न-किसी रूप में अवश्य सुनाई पड़ता है। इसका मूल कारण यह है कि प्रकृति की सुरम्य स्थली कौसानी में कवि का जन्म हुआ था, जहाँ घण्टों बैठकर वह प्राकृतिक छटा का अवलोकन किया करता था। 'पंत'जी की दृष्टि में प्रकृति सजीव है और उसमें अगोचर सत्ता का स्वरूप निहित है। प्रकृति की विविधता में भी वे एकता का अनुभव करते हैं। प्रकृति की प्रत्येक क्रिया में कवि अपनी ही संवेदना को प्रतिबिम्बित देखता है। सम्पूर्ण छायावादी काव्य में प्रकृति को मानवीय सुख-दुःख से प्रभावित चित्रित किया गया है। कवि की विरह-ज्वाला प्रकृति के प्रत्येक उपादान में दिखाई पड़ती है—

चिनगियों से तारों को डाल,
आग का-सा अँगार शशि लाल,
लहकता है फैला मणि-ज्वाल,
जगत् को डँसता है तम काल।

प्रकृति को देखने के उसके विभिन्न दृष्टिकोण हैं। कहीं तो वह तटस्थ भाव से प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण करता है, कहीं उसे आध्यात्मिक आधार प्रदान करता है तथा कहीं बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से प्रेरित हो उसके साथ अपने हृदय का तादात्म्य स्थापित करने लगता है।

कवि का मानवीय दृष्टिकोण अधिक उदात्त है। पुरुष की अपेक्षा नारी के प्रति उसके हृदय में अधिक सहानुभूति है। लगता है कि 'पंत' के सुकुमार व्यक्तित्व में नारीत्व भी घुला-मिला है। कभी भोली बालिका उसका ध्यान आकृष्ट करती है, कभी नवयुवती अपने सौन्दर्य-जाल में उलझाती है, कभी 'प्राणों की प्राण' का काल्पनिक रूप उसे भटकाता है और कभी नारी का मातृत्व उसे शान्तिमय आनन्द देता है। इस प्रकार काव्य-विकास के साथ ही कवि का नारीसम्बन्धी दृष्टिकोण भी उत्तरोत्तर विकसित और उदात्त होता गया है। प्रगतिशील जीवन-दर्शन से प्रभावित हो 'पंत'जी ने उपेक्षित नारी के विविध स्वरूपों का उद्घाटन किया है। 'देवि, माँ, सहचरि, प्राण' में सही विविधता विद्यमान है किन्तु सृजनशील नारी का मौलिक स्वरूप सभी में अनुस्यूत है। कवि की प्रगतिशील सांस्कृतिक चेतना नारी के भोग्या रूप को कभी स्वीकार नहीं कर पाती। समाज द्वारा तिरस्कृत नारी के प्रति इन्होंने सच्ची सहानुभूति व्यक्त की है और नारी को पैर की जूती समझने वाले समाज पर व्यंग्य भी किया है।

अभिव्यंजना कौशल की दृष्टि से 'पंत' का काव्य वैभवसंपन्न है। इनका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाव-जगत् जितना विस्तृत है, कलापक्ष उतना ही सूक्ष्म एवं मार्मिक। 'पंत'जी भाषा के अमर शिल्पी हैं। इनका शब्दचयन इतना सुचिन्तित है कि किसी शब्द के स्थान पर उसका पर्याय नहीं रखा जा सकता। भाषा-परिष्कार के क्षेत्र में 'पंत'जी का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। खड़ी बोली को कोमलकान्त पदावली से युक्त कर उसे काव्य-भाषा बनाने का श्रेय 'पंत'जी को ही है। ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणसंपन्न 'पंत' की भाषा ने सबको मुग्ध कर लिया है। 'पंत'जी ने बीस-पचीस वर्षों में ही खड़ी बोली को जितनी समृद्ध बना दिया, उतनी व्रज-भाषा एक लम्बे समय में भी नहीं बन पायी थी। इनकी भाषा की चित्रोपमता और शब्दों की चित्रमयता अपने सारे माधुर्य के साथ आकार पाती है। शब्द एक-दूसरे के साथ मिलकर चलते हैं और स्वतंत्र रूप से भी। व्याकरण के नियमों की उपेक्षा करते हुए इन्होंने अपनी दृष्टि से कोमल शब्दों को स्त्रीलिंग तथा परुष शब्दों को पुंलिंग स्वीकार किया है। संस्कृत प्रत्यय लगाकर इन्होंने अंग्रेजी की तरह कुछ शब्दों को गढ़ लिया है, जैसे—प्रिय के लिए 'प्रि', आह्लाद के लिए 'ह्लाद'। भाषा में लाक्षणिकता तो पग-पग पर दिखाई पड़ती है। विशेषण विपर्यय और मानवीकरण इनके प्रिय अलंकार हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, यमक, अपह्नुति, पर्यायोक्ति आदि का प्रयोग भी किया गया है। कहीं-कहीं मुहावरों और कहावतों के सफल प्रयोग से भाषा का स्वरूप और अधिक सहज हो गया है। भाव और भाषा सभी दृष्टियों से 'पंत'जी की कविता हिन्दी-साहित्य में अक्षुण्ण बनी रहेगी, इसमें सन्देह नहीं।

'प्रथम रश्मि' में प्रकृति चित्रण किया गया है। कवि को आश्चर्य है कि सर्वप्रथम 'बाल विहंगिनि' को ही प्रभात का आगमन कैसे ज्ञात हो जाता है। सारा संसार सुख की नींद में सो रहा होता है, तभी तरुवासिनि प्रात का स्वागत करने के लिए जागरण का शंखनाद फूँक देती है। कवि उस गीत को अलौकिक मानता है; क्योंकि किसी दैवी प्रेरणा से ही वह प्रथम रश्मि के प्रस्फुटित होने को समझ जाता है। रात्रि के अन्धकार में प्रकृति की पहचान खो जाती है, किन्तु प्रभात होते ही प्रकृति पल-पल में अपने वेश को परिवर्तित करने लगती है। कवि विहंगिनि की इस चेतना पर विस्मय-विमुग्ध है कि सबसे पहले वही इन प्राकृतिक परिवर्तनों से अवगत होती है। भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से कविता अपना प्रभाव डालती है।

'ग्रन्थि' कवि की भावनाप्रधान रचना है जिसे कुछ आलोचकों ने उसकी आत्माभिव्यक्ति के रूप में देखा है। यह एक प्रेमपरक आख्यान है जो संक्षिप्त किन्तु मार्मिक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रन्थि में कथानायक स्वयं अपनी प्रेम-कहानी कहता है। कहने का ढंग अपूर्व है, उसमें सर्वत्र नाटकीय तत्त्वों की प्रधानता पायी जाती है। प्रेमी-प्रेमिका की मनःस्थितियों का कवि ने बड़ा ही सूक्ष्म अवलोकन किया है। ग्रन्थि की कतिपय पंक्तियाँ बड़ी भावव्यंजक एवं कलात्मक हैं—

१. बाल रजनी-सी अलक थी डोलती
भ्रमित-सी शशि के बदन के बीच में।
अचल रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में॥

२. भाव सारे भर दिये ताबीज-से

३. वारि पीकर पूछता है घर सदा

४. पर हृदय सब भाँति तू कंगाल है।

गोरे मुखड़े पर हिलने-डुलने वाली अलक के लिए बाल रजनी का उपमान अर्थ-गर्भित है। सुछवि के काव्य में मुख की प्रमुखता को रेखांकित करने में 'अण्डर-लाइन' का भाव विद्यमान है। प्रेम की भूमिका के बाद ही कहानी एक घुमाव-दार मोड़ ग्रहण करती है और एक करुण उपसंहार के साथ समाप्त हो जाती है जिसके लिए नायक तैयार नहीं था। अपने प्रेम की असफलता पर नायक के मन में क्षोभ का होना स्वाभाविक है। विरहावस्था में उसकी चेतना जागरूक हो जाती है और वह वेदना के मनोरम विपिन में सुख और शान्ति का अनुभव करता है।

'पर्वत प्रदेश में पावस' शीर्षक कविता प्रकृति-निरीक्षण की सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देती है। प्रत्येक क्षण प्रकृति में परिवर्तन होता रहता है पर हमारी स्थूल दृष्टि उसे देख नहीं पाती। पावस ऋतु में पर्वत प्रदेश का सौन्दर्य ही निराला होता है। हरी-भरी घाटी सतरंगी आभा से कांतिमान हो उठती है। कवि ने बड़ी ही सफलता के साथ परिवर्तन की एक-एक रेखा को पकड़ने का प्रयास किया है। भाव और भाषा का अपूर्व सामंजस्य इस कविता में देखने को मिलता है। डॉ० नगेन्द्र इसकी विशेषताओं का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं— "पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश' में यदि लघु अक्षरों की आवृत्ति देशी बाइस्कोपों में घूमते हुए चित्रों की भाँति प्राकृतिक दृश्यों के परिवर्तन का आभास देती है, तो 'मेखलाकार पर्वत अपार' का 'आ' पर्वत के विस्तार का चित्र सम्मुख उप-स्थित करता है।"[१]

---

१. डॉ० नगेन्द्र : सुमित्रानंदन पंत, पृ. ५४।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'मौन निमंत्रण' पंतजी की रहस्यानुभूति को व्यंजित करने वाली कविता है जिसमें भाव और कल्पना का अद्भुत सम्मिश्रण देखने को मिलता है। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार इस प्रकार की कविताएँ पंतजी की समस्त काव्य-साधना की पुरस्कार हैं। उनकी भावुकता और कल्पना में दार्शनिकता का समावेश हो जाने से कविता का महत्त्व अधिक बढ़ गया है। पावस, वसंत, संध्या और प्रातः आदि अनेक खण्ड चित्रों से प्रकृति की विराटता का दार्शनिक शृंगार किया गया है। कवि इतना भावुक और तन्मय हो गया है कि अपने लिए वह 'जुड़ाती जब मैं आकुल प्राण' तथा 'नहीं कह सकती तुम हो कौन' का निःसंकोच प्रयोग करता है। मिलन की वास्तविकता दांपत्य संबंधों में ही संभव है। पंतजी की दृष्टि में प्रकृति जड़ एवं निश्चेष्ट नहीं है, बल्कि उनमें वे एक रहस्यमयी अगोचर सत्ता का अनुभव करते हैं जो उन्हें अनेक माध्यमों से गुप्त संदेश देती है। चाँदनी रात में टिमटिमाने वाले तारे, पावस की मेघाच्छन्न रात्रि में कौंधने वाली बिजली, वसंत में विकसित पुष्पों का सौरभ, क्षुब्ध सागर में उठने-गिरने वाली लहरें, सघन अन्धकार में चमकने वाले खद्योत तथा प्रातः ढुलकने वाले ओसबिन्दु—ये सभी कवि को उस रहस्यमयी सत्ता का मौन निमंत्रण देते हुए-से प्रतीत होते हैं।

'परिवर्तन' 'पंत'जी की प्रसिद्ध कविताओं में विशिष्ट स्थान रखती है। इतनी ओजपूर्ण और सशक्त कविता 'पंत'जी ने दूसरी नहीं लिखी। इसमें अनेक भावों की सुन्दर योजना देखने को मिलती है। विश्व-रंगमंच पर दृश्यों का परिवर्तन बड़ी द्रुत गति से होता है। कोमलतम वस्तुएँ कठोरता में परिवर्तित हो जाती हैं, शृंगार बीभत्स का रूप ग्रहण करने लगता है, बड़े-से-बड़े राजा रंक बन जाते हैं, ऊँचे-से-ऊँचे राज-प्रसाद खंडहरों में परिवर्तित हो जाते हैं, सुसज्जित नगर और उपवन निर्जन और उजाड़ बन जाते हैं—यह है परिवर्तन का नेत्र-निमीलन जो सृजन, सिंचन और संहार की भूमिका का निर्वाह करता है। अनेक आलोचकों ने इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। इसका कारण यह है कि कल्पना के पंख लगाकर भावना-लोक में विचरण करने वाला कवि पहली बार बड़ी सहृदयता के साथ धरती की कठोर वास्तविता का अनुभव करता हुआ उसी में निमग्न हो जाता है।

'नौका विहार' कालाकाँकर के प्रवास-काल में लिखी हुई 'पंत'जी की प्रसिद्ध रचना है। संपूर्ण कविता का मूर्तविधान बड़ा ही काव्यात्मक है। बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव के द्वारा प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रों की योजना अत्यंत रमणीय है। इसमें एक ओर जहाँ उपमा एवं रूपकगत अप्रस्तुतों के द्वारा प्राचीन रूढ़ियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का निर्वाह किया गया है, वहीं दूसरी ओर मानवीकरण और विशेषण विपर्यय जैसे आधुनिक अलंकारों का विनियोग भी हुआ है। रहस्यवाद के नाम पर केवल कौतूहल पाया जाता है किन्तु वेदान्त-दर्शन का कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा है जिसे अंतिम छन्द में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। सब मिलाकर इस कविता में भाषा की बिम्बविधायिनी शक्ति, सुन्दर शब्द-शिल्प, कवि की संवेदनात्मकता कल्पनाशीलता और सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का समुचित विकास देखा जा सकता है।

'द्रुत झरो' शीर्षक कविता प्राचीन मान्यताओं से स्थान पर नवीन मान्यताओं को स्वीकार करने का उद्घोष करती है। इसमें कवि का आशावादी स्वर मुखर हुआ है जो उसकी सुचिन्तित विचारधारा का प्रतिफल है। 'ग्रन्थि' और 'पल्लव' का अल्हड़ कवि वेदना और आँसू को ही जीवन की इयत्ता मान बैठा था और अनेक स्थलों पर वह दुःखवादी दर्शन की घोषणा कर चुका था किन्तु जैसे-जैसे उसके जीवन में संयम और गांभीर्य का समावेश होता गया वैसे-वैसे उसकी विचारधारा भी परिवर्तित होती गयी। गुंजन की रचनाओं में ही एक नवीन आशा और अभिलाषा का संचार होने लगा था किन्तु युगान्त में आकर उसकी विचारधारा पर्याप्त सुलझ गई है। प्रस्तुत कविता के माध्यम से वह जर्जर समाज की जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं को नष्ट-भ्रष्ट कर संसार में एक नवीन-ज्योति जलाने की मंगलकामना करता है।

'बापू के प्रति' नामक कविता में कवि ने अपने ही जीवनादर्शों को बापू के रूप में रूपायित किया है। यह आध्यात्मिक भावभूमि पर लिखी हुई अनुभूति-प्रेरित तथा चिन्तनप्रधान कविता है जिसमें कवि ने अपनी कल्पनाशीलता और बिम्बविधायिनी शक्ति के द्वारा बापू की पावन प्रतिमा प्रतिस्थापित की है। बापू की मृत्यु पर लिखी हुई यह कविता शोक-गीत के स्वरूप का निर्माण करती है। इसमें बापू के सिद्धांतों और कार्यों का भावव्यंजक चित्रण किया गया है। कवि ने गांधीजी के द्वारा चलाये गये असहयोग आन्दोलन, सत्य-अहिंसा के सिद्धांत तथा दर्शन एवं विज्ञान की चर्चा करते हुए अंत में उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है।

'ताज' कवि की यथार्थवादी भावभूमि पर लिखी हुई एक लघु रचना है। इसमें भावुकता के स्थान पर चिंतन का अनुभवशील स्वर मुखरित हुआ है। कवि की प्रगतिशील विचारधारा ताज के अप्रतिम सौन्दर्य से अप्रभावित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक विषमता को देखकर खिन्न है। अपनी प्रेयसी के अटूट प्रेम के नाम पर जिस ताजमहल का निर्माण किया गया, उसके बनने में समाज के एक बड़े समुदाय को कंगाल हो जाना पड़ा। इस प्रकार 'ताज' मानवतावादी मूल्यों का उपहास करता है। मृत्यु के इस अलौकिक सम्मान और नग्न, क्षुधातुर, वस्त्रहीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानव-जीवन में कितना अंतर है। जब तक इस सामाजिक विषमता को दूर नहीं किया जायगा समाज का कल्याण असंभव है।

महादेवी वर्मा की कविता का विकास वेदना और करुणा की परिधि में हुआ है। तरल मोती की कांति विकीर्ण करनेवाली उनकी कविता आँसुओं से भींगी हुई है। महादेवी ने अपने जीवन का तादात्म्य बादल के साथ स्थापित किया है। 'नीर भरी दुख की बदली' में अपने जीवन का इतिहास देखने वाली महादेवीजी बादल बनकर झर-झर मिटने की कामना करती हैं। इतने निष्काम और त्यागमय आत्मसमर्पण की महती शक्ति के आधार पर उन्होंने अपने हृदय में दुःख और पीड़ा का जो संसार बसा लिया है, उसे वे उन्मुक्त मन से प्यार करती हैं। मधुमय पीड़ा को पाल लेना तो आसान है पर उसका निर्वाह अत्यंत कठिन है। बौद्धदर्शन के दुःखवाद का प्रभाव इनकी रचनाओं में अवश्य दिखलाई पड़ता है किन्तु दोनों की मूल चेतना एक-दूसरे से भिन्न है। दुःख इनके जीवन में घुल-मिलकर एक हो गया और उसे ये किसी प्रकार अलग नहीं कर पातीं किन्तु बौद्धदर्शन दुःख के कारणों को दूर कर दुःख भगाने का प्रयास करता है। इनके अनुसार दुःख विनाश का कारण नहीं, बल्कि निर्माण में सहायक है और वही सृष्टि की एकात्मता का मूल कारण भी है। दूसरे के दुःख से दुःखी होना सहानुभूति है और यह सहानुभूति ही मानववादी चेतना का प्रमुख आधार है। महादेवी की दृष्टि में एक बूँद आँसू का महत्त्व हजार सुखों से बढ़कर है। रश्मि की भूमिका में वे लिखती हैं—"हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता।" ये दुःख में ही अपने प्रिय का प्रतिबिम्ब देखती हैं। दुःख से इनका इतना लगाव है कि पग-पग पर ये उससे प्रेरणा ग्रहण करती हुई संतोष और शान्ति का अनुभव करती हैं। महादेवीजी के जीवन में व्याप्त दुःख की इस बदली को देखकर अनेक लोगों को आश्चर्य हुआ है; महादेवीजी स्वयं उसका समाधान करती हैं। "सुख और दुःख के धूपछाँहीं डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिए भी किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नहीं है। संसार जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, परन्तु उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।" उनका यह दुःखवाद 'नीरजा' और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सान्ध्यगीत' में अधिक सघन हो गया है। इनके गीतों में सर्वत्र दुःख का अवसाद नहीं, बल्कि वेदना का माधुर्य पाया जाता है।

रहस्यवादी परिप्रेक्ष्य में महादेवीजी की कविताओं का विकास हुआ है। इसके आरंभिक तत्त्व कुतूहल से लेकर प्रिय समागम के आत्म-समर्पण तक की सारी अवस्थाओं का निरूपण इनकी कविताओं में हुआ है। प्रिय से इन्होंने जो दांपत्य संबंध स्थापित किया है, वह स्वाभाविक है। विरह निवेदन के माध्यम से इनकी भावाभिव्यक्ति में प्रेम की तीव्रता पायी जाती है। महादेवीजी की वेदना को केवल काल्पनिक नहीं माना जा सकता; उसमें कवयित्री के हृदय की सच्ची अनुभूति की तीव्रता के कारण ही अभिव्यक्ति में आवेग पाया जाता है। इनके रहस्यवाद का स्वरूप साधनात्मक होने के साथ ही भावात्मक भी है। महादेवी का रहस्यवाद प्रेम और वेदना की धुरी पर टिका हुआ है। भावात्मकता की प्रधानता के कारण इसमें भक्ति-भावना की प्रधानता पायी जाती है।

प्रकृति-चित्रण और प्रतीक-विधान की दृष्टि से भी महादेवीजी के काव्य का विशेष महत्त्व है। प्रकृति को एक सजीव चेतन तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हुए इन्होंने उससे अपना तादात्म्य स्थापित कर लिया है। प्रकृति में विराट् सत्ता का दर्शन करती हुई महादेवीजी उस पर विस्मय-विमुग्ध हैं। प्रकृति के प्रत्येक उपकरण से इनका हार्दिक लगाव है। प्रकृति को इन्होंने अनेक रूपों में चित्रित किया है। उसको इन्होंने बहुत निकट से देखा है और वह भी इनके सुख-दुःख में बराबर हिस्सा बँटाती रही है।

महादेवीजी के गीतों की भावभूमि प्रायः एक ही है। इसका कारण यह है कि प्रेम, वेदना और करुणा के परिप्रेक्ष्य में ही सारे भावों की अभिव्यक्ति हुई है। 'वसंत रजनी' शीर्षक गीत में प्रकृति का अलंकृत स्वरूप विद्यमान है। मानवीकरण और प्रतीकों के द्वारा इनका यह प्रकृति-चित्रण अत्यंत सजीव एवं प्राणवान् हो गया है। 'वसंत रजनी' को शुक्लाभिसारिका के रूप में चित्रित कर कवयित्री प्राकृतिक व्यंजना को भी बराबर सँजोये हुए है। ऐसा लगता है कि वसंत रजनी के प्रत्येक क्रिया-व्यापार के साथ कवयित्री ने अपनी एकात्मता स्थापित कर ली है।

'जीवन विरह का जलजात' शीर्षक कविता में कवयित्री ने जीवन में विरह के महत्त्व को स्वीकार किया है। विरह सृजन-शक्ति से संपन्न है इसलिए इसे सृष्टि के मूल में स्वीकार किया गया है। सन्त कवियों ने प्रेम के पहले ही विरह की स्थिति का चित्रण किया है। सूफियों ने भी विरह को प्रेम में अन्तर्भुक्त माना है। वस्तुतः आत्मा परमात्मा से वियुक्त होकर इस संसार में भटकती है, इसलिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमारा जीवन ही विरह से प्रेरित है। उसे विरह का जलजात कहना कितना सार्थक है।

इसी प्रकार 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ, 'मैं बनी मधुमास आली', 'क्या पूजा क्या अर्चन रे', 'मैं नीर भरी दुख की बदली', 'पंथ होने दो अपरिचित', 'मन्दिर का दीप' तथा 'सब आँखों के आँसू उजले' आदि गीतों में करुणा और विषाद की छाया स्पष्ट है। बीन, मधुमास, दीप आदि की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति गीतों को गंभीरता प्रदान करती है। 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ' में आत्मा-परमात्मा के संबंधों को व्यक्त करने के लिए विविध उपादानों को आधार बनाया गया है। अपने हृदय की तड़पन और पीड़ा को व्यक्त करने के लिए तृषित चातक, निठुर दीपक, बुलबुल आदि अप्रस्तुतों को जुटाया गया है। 'मैं बनी मधुमास आली' में वसंत-वैभव की स्मृतियों में खोयी हुई कवयित्री का स्वर अंत में निराशावादी हो गया है। 'क्या पूजा क्या अर्चन रे' नामक गीत के अंतर्गत महादेवीजी अपने शरीर में ही पूजा और अर्चना के सारे उपकरणों का अनुसंधान करती हैं। पुलकित रोम के अक्षत तथा मधुर पीड़ा के चन्दन से प्रेम भरे हृदयरूपी दीपक को जलाकर कवयित्री प्रियतम का जाप करती हुई निरंतर जीवन-साधना में लगी हुई है। 'मैं नीर भरी दुख की बदली' कवयित्री के जीवन-दर्शन को व्यक्त करती है। बदली के साथ उसने अपने जीवन का तादात्म्य स्थापित कर लिया है। बदली जैसे उमड़ती है, बरस कर मिट जाती है वैसे ही मानव-जीवन भी नश्वर है।

'पंथ होने दो अपरिचित' उनकी अविचल साधना की ओर संकेत करता है। महादेवी अपनी साधना में इतनी दृढ़ हैं कि मार्ग की विघ्न-बाधाओं की तनिक भी परवाह नहीं करतीं। साधक की अपूर्व निष्ठा और मार्ग की कठिनाइयों के बीच कवयित्री ने सामंजस्य स्थापित किया है। हर साधक के लिए साधना का मार्ग नया और अपरिचित हुआ करता है अतः मार्ग की कठिनाइयों से लौट आना कोई अस्वाभाविक नहीं है किन्तु महादेवी अपनी साधना में इतनी आस्थावान् हैं कि बीच मार्ग से लौटने वालों को कायर और निरुत्साही कहती हैं और अविचलित मन से उस पथ पर अकेले ही बढ़ती जाती हैं। वे अपनी साधना के द्वारा दुःख को भी सुख में बदल डालने की अद्भुत शक्ति रखती हैं।

'सब आँखों के आँसू उजले' नामक गीत अनुभूति की समानता का प्रतिपादन करता है संसार के प्राणियों में आकार-प्रकार और विचारों का भेद हो सकता है किन्तु अनुभूति सबकी एक जैसी है। एक प्रकार के तत्वों से सबका निर्माण हुआ है अतः सबके आँसुओं का रंग एक है। दीपक में ज्वाला और पुष्पों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में मकरन्द भरनेवाला तत्त्व एक ही है। संसार की इस अनेकता में भी एकता है। इस लौकिक अनुभूति के द्वारा अलौकिक अनुभूति का आभास मिलता है। 'रूपसि तेरा घन केश-पाश' प्रकृति-संबंधी मधुर गीत है जिसमें पावस का मानवीकरण किया गया है। धुली हुई चाँदनी रात में पावस ऋतु सद्यःस्नाता नायिका के समान है। प्रस्तुत गीत में वेशभूषा और वाह्याकृति के साथ ही वातावरण और आंगिक चेष्टाओं का हृदयग्राही संश्लिष्ट बिम्ब चित्रित किया गया है। अंतिम छन्द में प्रकृति को एक विराट् शक्ति के रूप में देखते हुए उसमें आत्मविस्मृत और एकाकार हो जाने की भावना विद्यमान है। प्रकृति और कवयित्री के बीच का सारा भेद मिट गया है।

'चिर सजग आँखें उनींदी' शीर्षक गीत में ओज, फटकार, प्रबोध, उत्साह, वीरता आदि कई भावों का समाहार किया गया है। यही कारण है कि इसमें वेदना और करुणा का स्वर घनीभूत नहीं हो पाता, फिर भी वेदना आप ही प्रस्फुटित हो उठी है। प्रस्तुत गीत आत्मा को संबोधित करके लिखा गया है अतः इसका धरातल आध्यात्मिक है किन्तु इस पर सामयिक प्रभाव और युगबोध का सामाजिक स्वर भी व्यंजित होता है। इस रूप में कवयित्री युवकों को जागरण का संदेश देती हुई उन्हें उद्बुद्ध करती है।

अस्तु, छायावाद के इन प्रसिद्ध कवियों और उनकी प्रमुख कविताओं का विवेचन कर लेने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि छायावादी कविता न तो सामाजिक परिप्रेक्ष्य से हटकर लिखी गयी है और न वह युगबोध से विच्छिन्न है। उसे नितांत वैयक्तिक भी नहीं कहा जा सकता। छायावाद का प्रत्येक कवि युगीन-चेतना से पूर्णतः अनुप्राणित है। इन कवियों ने समाज को एक नवीन जीवन-दृष्टि प्रदान की है तथा उसमें नव-चेतना का संचार किया है। भाव और शिल्प, दोनों दृष्टियों से छायावादी काव्य का विकास विशेष महत्त्व रखता है। भाषा का ऐसा संस्कार किसी अन्य युग में देखने को नहीं मिलता। इसमें सन्देह नहीं कि छायावादी कवियों ने अपने अपूर्व कल्पना-वैभव तथा नूतन शिल्पविधान द्वारा हिन्दी कविता को नई अर्थवत्ता प्रदान की है।

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयशंकर 'प्रसाद'

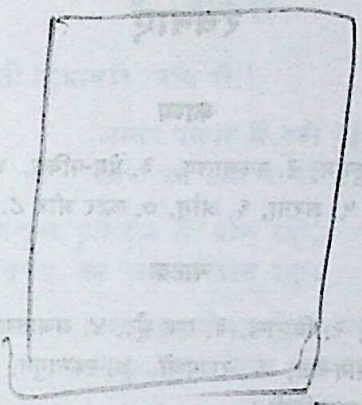

जन्म : ३० जनवरी, १८९० ई०
मृत्यु : १४ नवम्बर, १९३७ ई०

शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध की
पारदर्शिनी सुघड़ पुतलियाँ
चारो ओर नृत्य करतीं ज्यों
रूपवती रंगीन तितलियाँ !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रचनाएँ

काव्य

१. कानन-कुसुम, २. करुणालय, ३. प्रेम-पथिक, ४. महाराणा का महत्त्व, ५. झरना, ६. आँसू, ७. लहर और ८. कामायनी।

नाटक

१. कामना, २. विशाख, ३. एक घूँट, ४. अजातशत्रु, ५. जनमेजय का नाग-यज्ञ, ६. राज्यश्री, ७. स्कन्दगुप्त, ८. चन्द्रगुप्त और ९. ध्रुवस्वामिनी।

उपन्यास

१. कंकाल, २. तितली और ३. इरावती (अधूरा)।

कहानी-संग्रह

१. छाया, २. आँधी, ३. प्रतिध्वनि, ४. इन्द्रजाल और ५. आकाशदीप।

निबन्ध-संग्रह

१. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध।

विविध

१. प्रसाद संगीत, २. चित्राधार और ३. उर्वशी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाग री

बीती विभावरी जाग री !

अम्बर पनघट में डुबो रही—
तारा-घट ऊषा नागरी ।

खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अञ्चल डोल रहा;

लो यह लतिका भी भर लाई—
मधु मुकुल नवल रस गागरी ।

अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों मे मलयज बन्द किये—

तू अब तक सोई है आली ।
आँखों में भरे विहाग री !

●

विभावरी=तारोंवाली रात । अम्बर=आकाश । पनघट=पानी भरने का घाट । घट=घड़ा । नागरी=नगर युवती (यहाँ पनिहारिन के अर्थ में) । किसलय=कोंपल, नवपल्लव । अञ्चल=आँचल (वक्ष को ढँकने वाला साड़ी का छोर) । लतिका=बेल, छोटी लता । मुकुल=अर्द्ध विकसित कली । अमन्द=तेज, अधिक । विहाग=एक राग (आलस्यजनित मादकता) ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे नाविक

ले चल वहाँ भुलावा देकर,
मेरे नाविक ! धीरे धीरे।

जिस निर्जन में सागर लहरी
अम्बर के कानों में गहरी—
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे।
जहाँ साँझ-सी जीवन छाया,
ढीले अपनी कोमल काया,
नील नयन से ढुलकाती हो,
ताराओं की पाँति घनी रे।

जिस गम्भीर मधुर छाया में
विश्व चित्र-पट चल माया में—
विभुता विभु-सी पड़े दिखाई,
दुख-सुख वाली सत्य बनी रे।
श्रम-विश्राम क्षितिज वेला से—
जहाँ सृजन करते मेला से—
अमर जागरण उषा नयन से—
विखराती हो ज्योति घनी रे !

●

विभुता = प्रभुत्व, ऐश्वर्य। विभु = सर्वव्यापक, शक्तिशाली।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अरी वरुणा की शान्त कछार !

अरी वरुणा की शान्त कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

सतत व्याकुलता के विश्राम, अरे ऋषियों के कानन कुञ्ज !
जगत नश्वरता से लघु त्राण, लता, पादप, सुमनों के पुञ्ज !
तुम्हारी कुटियों में चुपचाप, चल रहा था उज्ज्वल व्यापार।
स्वर्ग की वसुधा से शुचि संधि, गूंजता था जिससे संसार।
अरी वरुणा की शान्त कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

तुम्हारे कुञ्जों में तल्लीन, दर्शनों के होते थे वाद।
देवताओं के प्रादुर्भाव, स्वर्ग के स्वप्नों के संवाद।
स्निग्ध तरु की छाया में बैठ, परिषदें करती थीं सुविचार—
भाग कितना लेगा मस्तिष्क, हृदय का कितना है अधिकार ?
अरी वरुणा की शान्त कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

छोड़कर पार्थिव भोग विभूति, प्रेयसी का दुर्लभ वह प्यार।
पिता का वक्ष भरा वात्सल्य, पुत्र का शैशव सुलभ दुलार।
दुःख का करके सत्य निदान, प्राणियों का करने उद्धार।
सुनाने आरण्यक संवाद, तथागत आया तेरे द्वार।
अरी वरुणा की शान्त कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

उज्ज्वल व्यापार=आध्यात्मिक चर्चा, ज्ञान का आदान-प्रदान। पार्थिव=राजोचित, राजसी। विभूति=ऐश्वर्य। आरण्यक=वेदों का एक भाग जिसमें वानप्रस्थों के कृत्यों का विवरण है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुक्ति जल की वह शीतल बाढ़, जगत् की ज्वाला करती शान्त।
तिमिर का हरने को दुख भार, तेज अमिताभ अलौकिक कान्त।
देव-कर से पीड़ित विक्षुब्ध, प्राणियों से कह उठा पुकार—
तोड़ सकते हो तुम भव-बन्ध, तुम्हें है यह पूरा अधिकार।
अरी वरुणा की शान्त कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार!

छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्य पथ से लो सुगति सुधार।
दुःख का समुदय उसका नाश, तुम्हारे कर्मों का व्यापार।
विश्व-मानवता का जय घोष, यहीं पर हुआ जलद-स्वर-मंद्र।
मिला था वह पावन आदेश, आज भी साक्षी हैं रवि-चन्द्र।
अरी वरुणा की शान्त कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार!

तुम्हारा वह अभिनन्दन दिव्य और उस यश का विमल प्रचार।
सकल वसुधा को दे सन्देश, धन्य होता है बारम्बार।
आज कितनी शताब्दियों बाद, उठी ध्वंसों में वह झंकार।
प्रतिध्वनि जिसकी सुने दिगन्त, विश्व वाणी का बने विहार।

●

अमिताभ=अति कांतियुक्त, बुद्ध का एक नाम। अतिवाद=अतिरंजना। समुदय=अभ्युदय।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पेशोला की प्रतिध्वनि

अरुण करुण बिम्ब !
वह निर्धूम भस्मरहित ज्वलन पिण्ड ?
विकल विवर्तनों से
विरल प्रवर्तनों में
श्रमित नमित सा—
पश्चिम के व्योम में है आज निरवलम्ब सा ।
आहुतियाँ विश्व की अजस्र लुटाता रहा—
सतत सहस्र-कर-माला से—
तेज ओज बल जो वदान्यता कदम्ब-सा ।
पेशोला की उर्मियाँ हैं शान्त, घनी छाया में—
तट तरु हैं चित्रित तरल चित्रसारी में ।
झोंपड़े खड़े हैं बने शिल्प से विषाद के—
दग्ध अवसाद से ।
धूसर जलद खंड भटक पड़े हैं,
जैसे विजन अनन्त में ।
कालिमा बिखरती है सन्ध्या के कलंक सी,
दुन्दुभि-मृदंग-तूर्य शान्त, स्तब्ध, मौन हैं ।
फिर भी पुकार सी है गूँज रही व्योम में—
"कौन लेगा भार यह ?
कौन विचलेगा नहीं ?
दुर्बलता इस अस्थिमांस की—
ठोंक कर लोहे से, परख कर वज्र से,
प्रलयोल्का-खंड के निकष पर कस कर

विवर्तन=घूमना, चक्कर खाना । प्रवर्तन=प्रवृत्त करना । निरवलंब=असहाय । धूसर=भूरे रंग का, मटमैला ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चूर्ण अस्थि पुञ्ज-सा हँसेगा अट्टहास कौन ?
साधना पिशाचों की बिखर चूर-चूर होके
धूलि सी उड़ेगी किस दृप्त फूत्कार से ।
कौन लेगा भार यह ?
जीवित है कौन ?
साँस चलती है किसकी
कहता है कौन ऊँची छाती कर, मैं हूँ—
—मैं हूँ—मेवाड़ में,
अरावली शृङ्ग-सा समुन्नत सिर किसका ?
बोलो, कोई बोलो—अरे क्या तुम सब मृत हो ?
आह, इस खेवा की !—
कौन थामता है पतवार ऐसे अंधड़ में
अन्धकार—पारावार गहन नियति-सा—
उमड़ रहा है ज्योति-रेखा-हीन क्षुब्ध हो ।
खींच ले चला है—
काल-धीवर अनन्त में,
साँस, सफरी सी अटकी है किसी आशा में ।
आज भी पेशोला के—
तरल जल-मण्डलों में,
वही शब्द घूमता-सा—
गूँजता विकल है ।
किन्तु वह ध्वनि कहाँ ?
गौरव की काया पड़ी माया है प्रताप की
वही मेवाड़ !
किन्तु आज प्रतिध्वनि कहाँ ?"

●

दृप्त = गर्वित, उन्मत्त । खेवा = बोझ से लदी नाव । सफरी = छोटी चमकीली मछली ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आंसू

बस गयी एक बस्ती है
स्मृतियों की इसी हृदय में
नक्षत्र-लोक फैला है
जैसे इस नील निलय में।

ये सब स्फुलिंग हैं मेरी
इस ज्वालामयी जलन के
कुछ शेष चिह्न हैं केवल
मेरे उस महामिलन के।

शीतल ज्वाला जलती है
ईंधन होता दृग-जल का
यह व्यर्थ साँस चल-चल कर
करती है काम अनिल का।

वाडवज्वाला सोती थी
इस प्रणय सिन्धु के तल में
प्यासी मछली-सी आँखें
थीं विकल रूप के जल में।

बुलबुले सिन्धु के फूटे
नक्षत्र-मालिका टूटी
नभ-मुक्त-कुन्तला धरणी
दिखलाई देती लूटी

छिल-छिल कर छाले फोड़े
मल-मलकर मृदुल चरण से
धुल-धुल कर बह रह जाते
आँसू करुणा के कण से

निलय = वासस्थान। स्फुलिंग = चिनगारी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस विकल वेदना को ले
किसने सुख को ललकारा
वह एक अबोध अकिंचन
बेसुध चैतन्य हमारा।

अभिलाषाओं की करवट
फिर सुप्त व्यथा का जगना
सुख का सपना हो जाना
भीगी पलकों का लगना।

इस हृदय-कमल का घिरना
अलि-अलकों की उलझन में
आँसू मरन्द का गिरना
मिलना निःश्वास पवन में।

मादक थी मोहमयी थी
मन बहलाने की क्रीड़ा
अब हृदय हिला देती है
वह मधुर प्रेम की पीड़ा।

सुख आहत शान्त उमंगें
बेगार सॉंस ढोने में
यह हृदय समाधि बना है
रोती करुणा कोने में।

चातक की चकित पुकारें
श्यामा-ध्वनि सरल रसीली
मेरी करुणार्द्र कथा की
टुकड़ी आँसू से गीली।

अकिंचन=निरीह, तुच्छ। सपना हो जाना=अप्राप्त होना, दूर हो जाना। मरन्द=मकरन्द। बेगार=अनिच्छापूर्वक किया जानेवाला कार्य। चकित=चौंकी हुई, घबरायी हुई। करुणार्द्र=करुणा से भीगी हुई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेसुध जो अपने सुख से
जिनकी हैं सुप्त व्यथाएँ
अवकाश भला है किनको
सनने को करुण कथाएँ।

जीवन की जटिल समस्या
है वढ़ी जटा-सी कैसी
उड़ती है धूल हृदय में
किसकी विभूति है ऐसी।

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति-सी छायी
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आयी।

मेरे क्रन्दन में बजती
क्या वीणा ?—जो सुनते हो
धागों से इन आँसू के
निज करुणा-पट बुनते हो।

रो-रो कर सिसक-सिसक कर
कहता मैं करुण कहानी
तुम सुमन नोचते सुनते
करते जानी अनजानी।

मैं वल खाता जाता था
मोहित बेसुध बलिहारी
अन्तर के तार खिचे थे
तीखी थी तान हमारी।

झंझा झकोर गर्जन था
विजली थी, नीरद-माला,
पाकर इस शून्य हृदय को
सबने आ डेरा डाला।

दुर्दिन=मेघाच्छन्न दिन, बुरा दिन। झंझा=आँधी-पानी, वेदनापूर्ण भावों का प्रवल वेग। गर्जन=गरजन., करुण-क्रन्दन। विजली=पीड़ा, कसक। नीरद-माला=निराशान्धकार।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घिर जातीं प्रलय घटाएँ
कुटिया पर आकर मेरी
तम-चूर्ण बरस जाता था
छा जाती अधिक अँधेरी।

बिजली - माला पहने फिर
मुसक्याता - सा आँगन में
हाँ कौन बरस जाता था
रस - बूँद हमारे मन में ?

तुम सत्य रहे चिर सुन्दर
मेरे इस मिथ्या जग के
थे केवल जीवन - संगी
कल्याण कलित इस मग के।

कितनी निर्जन रजनी में
तारों के दीप जलाये
स्वर्गङ्गा की धारा में
उज्ज्वल उपहार चढ़ाये।

गौरव था, नीचे आये
प्रियतम मिलने को मेरे
मैं इठला उठा अकिंचन
देखे ज्यों स्वप्न सबेरे।

मधुराका मुसक्याती थी
पहले देखा जब तुमको
परिचित - से जाने कब के
तुम लगे उसी क्षण हमको।

परिचय राका-जलनिधि का
जैसे होता हिमकर से
ऊपर से किरणें आतीं
मिलती हैं गले लहर से।

स्वर्गङ्गा = आकाश-गङ्गा। मधुराका = वसंत-पूर्णिमा की रात।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं अपलक इन नयनों से
निरखा करता उस छवि को
प्रतिभा डाली भर लाता
कर देता दान सुकवि को।

निर्झर-सा झिर-झिर करता
माधवी - कुञ्ज - छाया में
चेतना बही जाती थी
हो मन्त्र - मुग्ध माया में।

पतझड़ था झाड़ खड़े थे
सूखी - सी फुलवारी में
किसलय नव कुसुम बिछाकर
आये तुम इस क्यारी में।

शशि-मुख पर घूँघट डाले
अञ्चल में दीप छिपाये
जीवन की गोधूली में
कौतूहल से तुम आये।

घन में सुन्दर बिजली-सी
बिजली में चपल चमक-सी
आँखों में काली पुतली
पुतली में श्याम झलक-सी।

प्रतिमा में सजीवता - सी
बस गयी सुछवि आँखों में
थी एक लकीर हृदय में
जो अलग रही लाखों में।

माधवी = वासंती। पतझड़ = जीवन की शुष्कता एवं नीरसता का प्रतीक। फुलवारी = जीवन-वाटिका। क्यारी = हृदय का प्रतीक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माना कि रूप सीमा है
सुन्दर ! तव चिर यौवन में
पर समा गये थे, मेरे
मन के निस्सीम गगन में।

लावण्य - शैल राई - सा
जिस पर वारी बलिहारी
उस कमनीयता कला की
सुषमा थी प्यारी - प्यारी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रद्धा (कामायनी)

"दुःख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात;
एक परदा यह झीना नील
छिपाये है जिसमें सुख गात।

जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत् की ज्वालाओं का मूल;
ईश का वह रहस्य वरदान
कभी मत इसको जाओ भूल।

विषमता की पीड़ा से व्यस्त
हो रहा स्पंदित विश्व महान;
यही दुख-सुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।

नित्य समरसता का अधिकार
उमड़ता कारण जलधि समान;
व्यथा से नीली लहरों बीच
बिखरते सुख-मणि-गण द्युतिमान।

× × ×

लगे कहने मनु सहित विषाद—
"मधुर मारुत से ये उच्छ्वास
अधिक उत्साह तरंग अबाध
उठाते मानस में सविलास।

भूमा = विराट् पुरुष, ऐश्वर्य। समरसता = दुख-सुख की समरसता, समान भाव से युक्त होना। कारण = निमित्त, हेतु।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु जीवन कितना निरुपाय !
लिया है देख नहीं सन्देह;
निराशा है जिसका परिणाम,
सफलता का वह कल्पित गेह।

× × ×

कहा आगन्तुक ने सस्नेह :—
"अरे, तुम इतने हुए अधीर !
हार बैठे जीवन का दाँव,
जीतते मरकर जिसको वीर।

तप नहीं केवल जीवन सत्य
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद;
तरल आकांक्षा से है भरा
सो रहा आशा का आह्लाद।

प्रकृति के यौवन का शृंगार
करेंगे कभी न बासी फूल;
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र
आह उत्सुक है उनकी धूल।

पुरातनता का यह निर्मोक
सहन करती न प्रकृति पल एक,
नित्य नूतनता का आनन्द
किये है परिवर्तन में टेक।

युगों की चट्टानों पर सृष्टि
डाल पद-चिह्न चली गंभीर;
देव, गंधर्व, असुर की पंक्ति
अनुसरण करती उसे अधीर।

× × × ×

"एक तुम, यह विस्तृत भूखण्ड
प्रकृति वैभव से भरा अमंद;
कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड़ का चेतन आनन्द।

तप = सांसारिक विराग। निर्मोक = केंचुल, खाल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अकेले तुम कैसे असहाय
यजन कर सकते ? तुच्छ विचार !
तपस्वी ! आकर्षण से हीन
कर सके नहीं आत्म-विस्तार।

दब रहे हो अपने ही बोझ
खोजते भी न कहीं अवलम्ब,
तुम्हारा सहचर बनकर क्या न
उऋण होऊँ मैं बिना विलम्ब।

समर्पण लो सेवा का सार
सजल संसृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पद-तल में विगत विकार।

दया माया ममता लो आज,
मधुरिमा लो अगाध विश्वास;
हमारा हृदय रत्ननिधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास।

बनो संसृति के मूल रहस्य,
तुम्हीं से फैलेगी वह बेल;
विश्व भर सौरभ से भर जाय
सुमन के खेलो सुन्दर खेल।

× × × ×

"और यह क्या तुम सुनते नहीं
विधाता का मंगल वरदान—
'शक्तिशाली हो विजयी बनो'
विश्व में गूँज रहा जय गान।

"डरो मत अरे अमृत संतान
अग्रसर है मंगलमय वृद्धि;
पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र
खिंची आवेगी सकल समृद्धि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देव-असफलताओं का ध्वंस
प्रचुर उपकरण जुटाकर आज;
पड़ा है वन मानव सम्पत्ति
पूर्ण हो मन का चेतन राज।

चेतना का सुन्दर इतिहास
अखिल मानव भावों का सत्य;
विश्व के हृदय-पटल पर दिव्य
अक्षरों से अंकित हो नित्य।

विधाता की कल्याणी सृष्टि
सफल हो इस भूतल पर पूर्ण;
पटें सागर, बिखरें ग्रह-पुञ्ज
और ज्वालामुखियाँ हों चूर्ण।

उन्हें चिनगारी सदृश सदर्प
कुचलती रहे खड़ी सानन्द;
आज से मानवता की कीर्त्ति —
अनिल, भू, जल में रहे न बन्द।

जलधि के फूटें कितने उत्स
द्वीप कच्छप डूबें उतरायँ;
किन्तु वह खड़ी रहे दृढ़ मूर्ति
अभ्युदय का कर रही उपाय।

विश्व की दुर्बलता बल बने,
पराजय का बढ़ता व्यापार।
हँसाता रहे उसे सविलास
शक्ति का क्रीड़ामय संचार।

शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय,
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय!"

●

उत्स=स्रोत। अभ्युदय=उत्तरोत्तर वृद्धि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लज्जा (कामायनी)

"इतना न चमत्कृत हो बाले !
अपने मन का उपकार करो;
मैं एक पकड़ हूँ जो कहती
ठहरो कुछ सोच-विचार करो !
अम्बर-चुम्बी हिम-शृङ्गों से
कलरव कोलाहल साथ लिये;
विद्युत् की प्राणमयी धारा
बहती जिसमें उन्माद लिये।
मगल कुंकुम की श्री जिसमें
निखरी हो ऊषा की लाली;
भोला सुहाग इठलाता हो
ऐसी हो जिसमें हरियाली।
हो नयनों का कल्याण बना
आनन्द सुमन-सा विकसा हो,
वासन्ती के वन - वैभव में
जिसका पंचम स्वर पिक-सा हो।
जो गूँज उठे फिर नस - नस में
मूर्च्छना समान मचलता-सा,
आँखों के साँचे में आकर
रमणीय रूप बन ढलता-सा।
नयनों की नीलम की घाटी
जिस रस घन से छा जाती हो,
वह कौंध कि जिससे अन्तर की
शीतलता ठण्डक पाती हो।

कौंध=चमक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का
गोधूली की-सी ममता हो,
जागरण प्रात सा हंसता हो
जिसमें मध्याह्न निखरता हो।

हो चकित निकल आई सहसा
जो अपने प्राची के घर से,
उस नवल चन्द्रिका से बिछले
जो मानस की लहरों पर से।

फूलों की कोमल पंखुड़ियाँ
बिखरे जिसके अभिनन्दन में,
मकरन्द मिलाती हों अपना
स्वागत के कुंकुम चन्दन में।

कोमल किसलय मर्मर रव से
जिसका जयघोष सुनाते हों,
जिसमें दुख सुख मिलकर मन के
उत्सव आनन्द मनाते हों।

उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनन्त अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं।

मैं उसी चपल की धात्री हूँ
गौरव महिमा हूँ सिखलाती,
ठोकर जो लगने वाली है
उसको धीरे से समझाती।

मैं देव-सृष्टि की रति रानी
निज पंचबाण से वंचित हो,
बन आवर्जना मूर्ति दीना
अपनी अतृप्ति-सी संचित हो।

हिल्लोल = लहर, मन की तरंग। आवर्जना = पराभूत होना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवशिष्ट रह गई अनुभव में
अपनी अतीत असफलता-सी;
लीला-विलास की खेद भरी
अवसादमयी श्रम दलिता-सी।

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ
मैं शालीनता सिखाती हूँ;
मतवाली सुन्दरता पग में
नूपुर-सी लिपट मनाती हूँ।

लाली बन सरस कपोलों में
आँखों में अंजन-सी लगती,
कुञ्चित अलकों-सी घुँघराली
मन की मरोर बनकर जगती।

चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली;
मैं वह हलकी-सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।

× × ×

"हाँ ठीक परन्तु बताओगी
मेरे जीवन का पथ क्या है?
इस निविड़ निशा में संसृति की
आलोकमयी रेखा क्या है?
यह आज समझ तो पायी हूँ
मैं दुर्बलता में नारी हूँ;
अवयव की सुन्दर कोमलता
लेकर मैं सबसे हारी हूँ।
पर मन भी क्यों इतना ढीला
अपने ही होता जाता है;
घनश्याम खण्ड-सी आँखों में
क्यों सहसा जल भर आता है?

कुञ्चित = टेढ़ी। निविड़ = घोर, घनी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वस्व समर्पण करने की
विश्वास-महातरु छाया में;
चुपचाप पड़ी रहने की क्यों
ममता जगती है माया में।
छायापथ में तारक द्युति-सी
झिलमिल करने की मधुलीला;
अभिनय करती क्यों इस मन में
कोमल निरीहता श्रमशीला ?
निस्संबल होकर तिरती हूँ
इस मानस की गहराई में;
चाहती नहीं जागरण कभी
सपने की इस सुघराई में।
नारी जीवन का चित्र यही
क्या ? विकल रंग भर देती हो;
अस्फुट रेखा की सीमा में
आकार कला को देती हो।
रुकती हूँ और ठहरती हूँ
पर सोच-विचार न कर सकती;
पगली-सी कोई अन्तर में
बैठी जैसे अनुदिन बकती।

निरीहता = चेष्टाहीनता। अनुदिन = प्रतिदिन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

जन्म : वसंत पंचमी, १८९७ ई०
मृत्यु : १५ अक्टूबर, १९६१ ई०

अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा,
श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा।
बह रही है, हृदय पर केवल अमा;
मैं अलक्षित हूँ; यही कवि कह गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रचनाएँ

काव्य-संग्रह

१. अनामिका, २. परिमल, ३. गीतिका, ४. तुलसीदास (प्रबन्ध-रचना), ५. कुकुरमुत्ता, ६. अणिमा, ७. बेला, ८. नये पत्ते, ९. आराधना, १०. अर्चना, ११. गीत-गुंज, १२. सांध्य-काकली और १३. अपरा (चुनी हुई कविताओं का संकलन)।

गद्य-रचनाएं

१. लिली, २. सुकुल की बीवी, ३. निरुपमा, ४. अप्सरा, ५. अलका, ६. चोटी की पकड़, ७. कुल्ली भाट, ८. बिल्लेसुर बकरिहा, ९. चतुरी चमार, १०. चाबुक, ११. चयन, १२. प्रबन्ध-प्रतिमा, १३. प्रबन्ध-पद्म, १४. पन्त और पल्लव तथा १५. संग्रह इत्यादि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जागो फिर एक बार

जागो फिर एक बार !
प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें,
अरुण-पंख तरुण-किरण
खड़ी खोल रही द्वार—
जागो फिर एक बार !

आँखें अलियों-सी
किस मधु की गलियों में फँसीं
बन्द कर पाँखें
पी रही हैं मधु मौन
अथवा सोईं कमल-कोरकों में ?—
बन्द हो रहा गुञ्जार—
जागो फिर एक बार !

अस्ताचल ढले रवि,
शशि-छवि विभावरी में
चित्रित हुई है देख
यामिनी-गंधा जगी,
एकटक चकोर-कोर दर्शन-प्रिय,
आशाओं भरी मौन भाषा बहुभावमयी
घेर रहा चन्द्र को चाव से
शिशिर-भार-व्याकुल कुल
खुले फूल झुके हुए

कोरक=फूल की कटोरी, कली। यामिनी-गंधा=रजनीगंधा, हुस्ना नामक पुष्प विशेष।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आया कलियों में मधुर
मद-उर यौवन-उभार—
जागो फिर एक बार !

पिउ-रव पपीहे प्रिय बोल रहे,
सेज पर विरह-विदग्धा वधू
याद कर बीती बातें, रातें मन-मिलन की,
मूँद रही पलकें चारु,
नयन-ज़ल ढल गये,
लघुतर कर व्यथा-भार—
जागो फिर एक बार !

सहृदय समीर जैसे
पोंछो प्रिय नयन-नीर
शयन-शिथिल बाहें
भर स्वप्निल आवेश में,
आतुर उर वसन-मुक्त कर दो,
सब सुप्ति सुखोन्माद हो,
छूट-छूट अलस
फैल जाने दो पीठ पर
कल्पना से कोमल
ऋजु-कुटिल प्रसारकामी केश-गुच्छ ।
तन-मन थक जायँ,
मृदु सुरभि-सी समीर में
बुद्धि बुद्धि में हो लीन
मन में मन, जी जी में,
एक अनुभव बहता रहे

रव=ध्वनि । विरह-विदग्धा=विरह-पीड़िता । ऋजु-कुटिल=सीधे और लहरदार । प्रसारकामी=फैलने की इच्छा करनेवाले, लम्बे । केश-गुच्छ=बालों का गुच्छा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उभय आत्माओं में,
कब से मैं रही पुकार—
जागो फिर एक बार !

उगे अरुणाचल में रवि,
आई भारती-रति कवि-कण्ठ में,
क्षण-क्षण में परिवर्तित
होते रहे प्रकृति पट,
गया दिन, आई रात,
गई रात, खुला दिन,
ऐसे ही संसार के बीते दिन, पक्ष, मास,
वर्ष कितने हजार—
जागो फिर एक बार !

•

अरुणाचल = एक पर्वत जिसके पीछे से सूर्योदय की बात कही जाती है।
भारती = वाणी, सरस्वती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्ध्या सुन्दरी

दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे।
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर,—
किन्तु, जरा गम्भीर,—नहीं है उनमें हास-विलास।
हंसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले-काले बालों से,
हृदयराज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की-सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली
सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह,
छाँह-सी अम्बर-पथ से चली।
नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा
नहीं होता कोई अनुराग-राग आलाप,
नूपुरों में भी रुनझुन-रुनझुन नहीं
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप, चुप, चुप"
है गूँज रहा सब कहीं—
व्योम-मण्डल में—जगती तल में—
सोती शान्त सरोवर पर उस अमल-कमलिनी-दल में—
सौन्दर्य-गर्विता सरिता के अति विस्तृत वक्षःस्थल में—

दिवसावसान=दिन समाप्त होने का समय, सान्ध्य वेला। तिमिराञ्चल=अन्धकार का आँचल। अम्बर-पथ=आकाश-मार्ग। व्योम=आकाश। अमल=स्वच्छ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धीर वीर गम्भीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में—
उत्ताल-तरंगाघात-प्रलय-घन-गर्जन-जलधि प्रबल में—
क्षिति में—जल में—नभ में—अनिल-अनल में—
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप, चुप, चुप"
है गूँज रहा सब कहीं,—

और क्या है ? कुछ नहीं ।
मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला एक पिलाती,
सुलाती उन्हें अंक पर अपने,
दिखलाती फिर विस्मृति के वह अगणित मीठे सपने;
अर्धरात्रि की निश्चलता में हो जाती जब लीन,
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कण्ठ से
आप निकल पड़ता तब एक विहाग ।

उत्ताल = ऊँचा । अनिल = पवन । अनल = अग्नि । विहाग = एक राग विशेष ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बादल राग

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घनघोर !
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर !

झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में,
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में,
सरित-तड़ित-गति-चकित पवन में,
मन में विजन गहन-कानन में,
आनन-आनन में, रस घोर-कठोर—
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर !

अरे वर्ष के हर्ष !
बरस तू बरस-बरस रसधार !
पार ले चल तू मुझको,
बहाँ, दिखा मुझको भी निज
गर्जन-भैरव संसार !
उथल-पुथल कर हृदय—
मचा हलचल—
चल रे चल,—
मेरे पागल बादल !
धँसता दलदल
हँसता है नद खल्-खल्
बहता, कहता कुलकुल कलकल !
देख-देख नाचता हृदय
बहने को महाविकल-बेकल,

तरु-मर्मर=वृक्ष की मर्मर ध्वनि । तड़ित=बिजली । गहन-कानन=सघन जंगल । भैरव=भयानक । बेकल=बेचैन ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस मरोर से—इसी शोर से—
सघन घोर गुरु गहन रोर से
मुझे गगन का दिखा सघन वह छोर !
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर !

•

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विधवा

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन
वह क्रूर-काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी-लता-सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।

षड्ऋतुओं का शृंगार
कुसुमित कानन में नीरव-पद-संचार,
अमर कल्पना में स्वच्छन्द विहार—
व्यथा की भूली हुई कथा है,
उसका एक स्वप्न अथवा है।

उसके मधु-सुहाग का दर्पण
जिसमें देखा था उसने
बस, एक बार बिम्बित अपना जीवन-धन,
अबल हाथों का एक सहारा—
लक्ष्य जीवन का प्यारा वह ध्रुवतारा
दूर हुआ वह बहा रहा है
उस अनन्त पथ से करुणा की धारा।

हैं करुणा-रस से पुलकित इसकी आँखें,
देखा तो भींगी मन-मधुकर की पाँखें;
मृदु रसावेश में निकला जो गुञ्जार
वह और न था कुछ, था बस हाहाकार !

इष्टदेव = आराध्यदेव। जीवन-धन = प्रियतम। अबल = निर्बल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस करुणा की सरिता के मलिन पुलिन पर,
लघु टूटी हुई कुटी का, मौन बढ़ाकर
अति छिन्न हुए भीगे अंचल में मन को—
दुख रूखे-सूखे अधर त्रस्त चितवन को
वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर,

रोती है अस्फुट स्वर में,
दुख सुनता है आकाश धीर—
निश्चल समीर,
सरिता की लहरें भी ठहर-ठहर कर।

कौन उसको धीरज दे सके,
दुःख का भार कौन ले सके ?
यह दुःख वह जिसका नहीं कुछ छोर है,
दैव, अत्याचार कैसा घोर और कठोर है !
क्या कभी पोंछे किसी के अश्रु-जल ?
या किया करते रहे सबको विकल ?
ओस-कण-सा पल्लवों से झर गया
जो अश्रु, भारत का उसी से सर गया।

त्रस्त = भयभीत। अस्फुट = अप्रकट। निश्चल = स्थिर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राम की शक्ति-पूजा

रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत-चरण,
श्लथ धनु-गुण है, कटि-बन्ध स्रस्त-तूणीर-धरण,
दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार;
चमकती दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार।

आये सब शिविर, सानु पर पर्वत के, मन्थर,
सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवान आदिक वानर,
सेनापति दल विशेष के, अंगद, हनूमान,
नल-नील, गवाक्ष, प्रात के रण का समाधान
करने के लिए, फेर वानर-दल आश्रम-स्थल।

बैठे रघुकुल-मणि श्वेत-शिला पर, निर्मल जल
ले आये कर-पद-क्षालनार्थ पटु हनूमान;
अन्य वीर सर के गये तीर सन्ध्या-विधान—
वन्दना ईश की करने को, लौटे सत्वर,
सब घेर राम को बैठे आज्ञा को तत्पर;
पीछे लक्ष्मण, सामने विभीषण मल्ल धीर,—
सुग्रीव, प्रान्त पर पाद-पद्म के महावीर,
यूथपति अन्य जो, यथास्थान हो निर्निमेष
देखते राम का जित-सरोज-मुख-श्याम देश।

श्लथ = शिथिल। धनु-गुण = धनुष की डोरी। स्रस्त = ढीला। विपर्यस्त = अस्त-व्यस्त। नैशान्धकार = रात्रि का अन्धकार। सानु = पर्वत के ऊपर की चौरस भूमि। क्षालनार्थ = धोने के लिए। सत्वर = शीघ्र। निर्निमेष = निष्पलक। जित-सरोज-मुख = पराजित कमल-मुख।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है अमा-निशा, उगलता गगन घन-अन्धकार;
खो रहा दिशा का ज्ञान; स्तब्ध है पवन-चार;
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल;
भूधर ज्यों ध्यानमग्न; केवल जलती मशाल।

स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय
रह-रह उठता जग जीवन में रावण-जय-भय;
जो नहीं हुआ आज तक हृदय रिपुदम्य-श्रान्त,
एक भी, अयुत-लक्ष में रहा जो दुराक्रान्त,
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार,
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार-हार;

ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का,—प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का—नयनों से गोपन—प्रिय सम्भाषण—
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन,—
काँपते हुए किसलय—झरते पराग समुदय,—
गाते खग नव-जीवन-परिचय—तरु मलय-वलय,
ज्योतिः-प्रपात स्वर्गीय,—ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,—
जानकी-नयन कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।

सिहरा तन, क्षण भर भूला मन, लहरा समस्त,
हर धनुभंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,
फूटी स्मिति सीता-ध्यान-लीन राम के अधर,
फिर विश्व-विजय-भावना हृदय में आयी भर,
वे आये याद दिव्य शर अगणित मन्त्रपूत,—

अमा = अमावस्या। पवन-चार = वायु की गति। अप्रतिहत = अबाधित। रिपुदम्य = शत्रु द्वारा पराभूत। श्रान्त = थका हुआ। अयुत = पृथक्। अच्युत = निर्विकार। समुदय = राशि। स्वीय = अपना। तुरीय = गतियुक्त, त्वरा अवस्था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फड़का पर नभ को उड़े सकल ज्यों देवदूत,
देखते राम, जल रहे शलभ ज्यों रजनीचर,
ताड़का, सुबाहु, विराध, शिरस्त्रय, दूषण-खर;
फिर देखी भीमा-मूर्ति आज रण देखी जो
आच्छादित किये हुए सम्मुख समग्र नभ को,
ज्योतिर्मय अस्त्र सकल बुझ-बुझकर हुए क्षीण,
पा महानिलय उस तन में क्षण में हुए लीन;
लख शंकाकुल हो गये अतुल-बल शेष शयन,
खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन;
फिर सुना—हँस रहा अट्टहास रावण खल् खल्,
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता-दल।
बैठे मारुति देखते राम-चरणारविन्द—
युग 'अस्ति-नास्ति' के एक रूप गुण-गण अनिंद्य,
साधना-मध्य भी साम्य—वाम-कर दक्षिण-पद,
दक्षिण-कर-तल पर वाम चरण, कपिवर गद्गद
पा सत्य, सच्चिदानन्द रूप, विश्राम धाम,
जपते सभक्ति अजपा विभक्त हो राम-नाम।
युग चरणों पर आ पड़े अस्तु वे अश्रु-युगल,
देखा कंपि ने, चमके नभ में ज्यों तारा दल;—
ये नहीं चरण राम के, बने श्यामा के शुभ,—
सोहते मध्य में हीरक-युग या दो कौस्तुभ,
टूटा वह तार ध्यान का, स्थिर मन हुआ विकल
सन्दिग्ध भाव की उठी दृष्टि, देखा अविकल
बैठे वे वहीं कमल-लोचन, पर सजल नयन,
व्याकुल-व्याकुल कुछ चिर प्रफुल्ल मुख निश्चेतन।
"ये अश्रु राम के" आते ही मन में विचार,
उद्वेल हो उठा शक्ति-खेल-सागर अपार

भावित = चिन्तित। दो मुक्ता-दल = दो अश्रुबिन्दु। चरणारविन्द = चरण-कमल। अजपा = एक मंत्र जिसका उच्चारण साँस के भीतर-बाहर आने-जाने मात्र से किया जाता है। कौस्तुभ = रत्न विशेष जिसे विष्णु अपनी छाती पर धारण किये रहते हैं। खेल = क्रीड़ाशील।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो श्वसित पवन उनचास पिता पक्ष से तुमुल,
एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल,
शत घूर्णावर्त, तरंग-भंग, उठते पहाड़,
जल-राशि-राशि जल पर चढ़ता खाता पछाड़,
तोड़ता बन्ध-प्रतिसन्ध धरा, हो स्फीत-वक्ष
दिग्विजय-अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष,
शत-वायु-वेग-बल, डूबा अतल में देश-भाव,
जल-राशि विपुल मथ मिला अनिल में महाराव
वज्त्रांग तेजधन बना पवन को, महाकाश
पहुँचा, एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास।

रावण-महिमा श्यामा विभावरी, अन्धकार,
यह रुद्र राम-पूजन-प्रताप तेज:प्रसार;
इस ओर शक्ति शिव की जो दशस्कन्ध-पूजित,
उस ओर रुद्र-वन्दन जो रघुनन्दन-कूजित;
करने को ग्रस्त समस्त व्योम कपि बढ़ा अटल,
लख महानाश शिव अचल, हुए क्षण भर चंचल;
श्यामा के पद तल भार धरण हर मन्द्रस्वर
बोले—"सम्बरो, देवि, निज तेज, नहीं वानर
यह, नहीं हुआ शृङ्गार-युग्म-गत, महावीर
अर्चना राम की मूर्तिमान अक्षय-शरीर,
चिर ब्रह्मचर्य-रत ये एकादश रुद्र, धन्य,
मर्यादा-पुरुषोत्तम के सर्वोत्तम, अनन्य
लीला-सहचर, दिव्यभाव धर, इन पर प्रहार
करने पर होगी देवि, तुम्हारी विषम हार,
विद्या का ले आश्रय इस मन को दो प्रबोध,
झुक जायेगा कपि, निश्चय होगा दूर रोध।"
कह हुए मौन शिव, पवन-तनय में भर विस्मय
सहसा नभ में अंजना-रूप का हुआ उदय;

श्वसित=श्वासयुक्त। तुमुल=भयंकर, क्षुब्ध। घूर्णावर्त=चक्करदार भँवरें। प्रतिसंध=जोड़, सन्धि। महाराव=विपुल ध्वनि; गुंजार। मंद्र=गम्भीर ध्वनि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बोली माता—"तुमने जब रवि को लिया निगल
तब नहीं बोध था तुम्हें; रहे बालक केवल;
यह वही भाव कर रहा तुम्हें व्याकुल रह-रह,
यह लज्जा की है बात कि माँ रहती सह-सह;
यह महाकाश, है जहाँ वास शिव का निर्मल—
पूजते जिन्हें श्रीराम उसे ग्रसने को चल
क्या नहीं कर रहे तुम अनर्थ ? सोचो मन में;
क्या दी आज्ञा ऐसी कुछ श्री रघनन्दन ने ?
तुम सेवक हो, छोड़कर धर्म कर रहे कार्य—
क्या असम्भाव्य हो यह राघव के लिए धार्य ?"
कपि हुए नम्र, क्षण में माता-छवि हुई लीन,
उतरे धीरे-धीरे गह प्रभुपद हुए दीन।

सब सभा रही निस्तब्ध, राम के स्तिमित नयन
छोड़ते हुए शीतल प्रकाश देखते विमन,
जैसे ओजस्वी शब्दों का जो था प्रभाव
उससे न इन्हें कुछ चाव, न हो कोई दुराव,
ज्यों हों वे शब्दमात्र—मैत्री की समनुरक्ति,
पर जहाँ गहन भाव के ग्रहण की नहीं शक्ति।
कुछ क्षण तक रहकर मौन सहज निज कोमल स्वर
बोले रघुमणि—"मित्रवर, विजय होगी न, समर
यह नहीं रहा नर-वानर का राक्षस से रण,
उतरी हैं महाशक्ति रावण से पाकर आमन्त्रण,
अन्याय जिधर, हैं उधर शक्ति।" कहते छल-छल
हो गये नयन, कुछ बूंद पुनः ढलके दृग्जल,
रुक गया कण्ठ, चमका लक्ष्मण तेज प्रचण्ड
धंस गया धरा में कपि गह-युग-पद, मसक दण्ड
स्थिर जाम्बवान,—समझते हुए ज्यों सकल भाव,
व्याकुल सुग्रीव,—हुआ उर में ज्यों विषय घाव,

विमन=खिन्न, उदास। चाव=अनुराग, इच्छा, उमंग। दुराव=गोपन। समनुरक्ति=अभिन्न प्रेम।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निश्चित-सा करते हुए विभीषण कार्यक्रम,
मौन में रहा यों स्पन्दित वातावरण विषम।

निज सहज रूप में संयत हो जानकी-प्राण
बोले—"आया न समझ में यह दैवी विधान;
रावण अधर्मरत भी अपना, मैं हुआ अपर,—
यह रहा, शक्ति का खेल समर, शंकर, शंकर!
करता मैं योजित बार-बार शर-निकर निशित,
हो सकती जिनसे यह संसृति सम्पूर्ण विजित,
जो तेजःपुञ्ज, सृष्टि की रक्षा का विचार,
है जिनमें निहित पतनघातक संस्कृति अपार—

शत-शुद्धि-बोध—सूक्ष्मातिसूक्ष्म मन का विवेक,
जिनमें है क्षात्र-धर्म का धृत पूर्णाभिषेक,
जो हुए प्रजापतियों के संयम से रक्षित,
वे शर हो गये आज रण में श्रीहत, खण्डित!
देखा है महाशक्ति रावण को लिये अंक,
लांछन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक;
द्रुत मन्त्र-पूत शर संवृत करतीं बार-बार,
निष्फल होते लक्ष्य पर क्षिप्र वार पर वार।
विचलित लख कपिदल, क्रुद्ध युद्ध को मैं ज्यों-ज्यों,
झक-झक झलकती वह्नि वामा के दृग त्यों-त्यों;
पश्चात्, देखने लगीं मुझे, बंध गये हस्त,
फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बंधा मैं, हुआ त्रस्त!" 760

●

योजित=युक्त। निकर=समूह। निशित=सान पर चढ़ाकर तेज किया हुआ, तेज, तीक्ष्ण। श्रीहत=कांतिहीन। शशांक=चन्द्रमा। संवृत=छिपा हुआ, ढँका हुआ। क्षिप्र=तेज, शीघ्रगामी। वामा=दुर्गा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गहन है यह अन्ध कारा

गहन है यह अन्ध कारा;
स्वार्थ के अवगुण्ठनों से
हुआ है लुण्ठन हमारा।

खड़ी है दीवार जड़ की घेरकर,
बोलते हैं लोग ज्यों मुँह फेरकर,
इस गगन में नहीं दिनकर,
नहीं शशधर, नहीं तारा।

कल्पना का ही अपार समुद्र यह,
गरजता है घेरकर तनु, रुद्र यह,
कुछ नहीं आता समझ में,
कहाँ है श्यामल किनारा।

प्रिय मुझे वह चेतना दो देह की,
याद जिससे रहे वंचित गेह की,
खोजता फिरता न पाता हुआ,
मेरा हृदय हारा।

●

अन्ध कारा=अन्धकार की कैद, अज्ञान का बन्धन। अवगुंठन=घूँघट, पर्दा। लुण्ठन=लुढ़काव, पतन। शशधर=चन्द्रमा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्नेह निर्झर बह गया है

स्नेह—निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है।
आम की यह डाल जो सूखी दिखी,
कह रही है—"अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ—"
जीवन दह गया है।

दिये हैं मैंने जगत् को फूल-फल,
किया है अपनी प्रभा से चकित-चल;
पर अनश्वर था सकल पल्लवित पल—
ठाट जीवन का वही
जो ढह गया है।

अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा,
श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा।
बह रही है हृदय पर केवल अमा;
मैं अलक्षित हूँ; यही
कवि कह गया है।

●

पिक=कोयल। शिखी=मयूर। निरुपमा=अनुपमेय। अमा=अमावस्या। अलक्षित=अदृश्य, अज्ञात।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सरोज स्मृति

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका !
जाना तो अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित-काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर।
शुचिते, पहनाकर चीनांशुक
रख सका न तुझे अतः दधिमुख।
क्षीण का न छीना कभी अन्न,
मैं रख न सका वे दृग विपन्न,
अपने आँसुओं अतः बिम्बित
देखे हैं अपने ही मुख-चित।

सोचा है नत हो बार-बार—
यह हिन्दी का स्नेहोपहार,
यह नहीं हार मेरी, भास्वर
यह रत्नहार-लोकोत्तर वर।—
अन्यथा, जहाँ है भाव शुद्ध
साहित्य कला कौशल प्रबुद्ध,
हैं दिये हुए मेरे प्रमाण
कुछ नहीं, प्राप्ति को समाधान
पार्श्व में अन्य रख कुशल हस्त
गद्य में पद्य में समाभ्यस्त।—

अर्थागमोपाय = धनोपार्जन का उपाय। चीनांशुक = रेशमी वस्त्र। भास्वर = दीप्तिमान, चमकीला। समाभ्यस्त = समान रूप से अभ्यासी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्तु मैं उपार्जन को अक्षम
कर नहीं सका पोषण उत्तम
कुछ दिन को, जब तू रही साथ,
अपने गौरव से झुका माथ,
पुत्री भी, पिता-गेह में स्थिर,
छोड़ने के प्रथम जीर्ण अजिर।

आँसुओं सजल दृष्टि की छलक
पूरी न हुई जो रही कलक
प्राणों की प्राणों में दब कर
कहती लघु-लघु उसाँस में भर;
समझता हुआ मैं रहा देख,
हटती भी पथ पर दृष्टि टेक।

तू सवा साल की जब कोमल
पहचान रही ज्ञान में चपल
माँ का मुख, हो चम्बित क्षण-क्षण
भरती जीवन में नव-जीवन,
वह चरित पूर्ण कर गई चली
तू नानी की गोद जा पली।

धीरे-धीरे फिर बढ़ा चरण,
बाल्य की केलियों का प्रांगण
कर पार, कुंज-तारुण्य सुघर
आई, लावण्य-भार थर-थर
काँपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकोश नव वीणा पर।

सासु ने कहा लख एक दिवस —
"भैया अब नहीं हमारा बस,
पालना-पोसना रहा काम,
देना सरोज को 'धन्य-धाम'
शुचि वर के कर कुलीन लखकर

अक्षम=असमर्थ। मालकोश—संपूर्ण जाति का एक राग।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है काम तुम्हारा धर्मोत्तर
अब कुछ दिन इसे साथ लेकर
अपने घर रहो ढूँढ़कर वर
जो योग्य तुम्हारे करो ब्याह
होंगे सहाय हम सहोत्साह।"

– सोचा मन में हत बार-बार—
"ये कान्यकुब्ज-कुल कुलांगार,
खाकर पत्तल में करें छेद,
इनके हित कन्या, अर्थ खेद,
इस विषम बेलि में विष ही फल,
यह दग्ध मरुस्थल–नहीं सुजल।"
वे जो यमुना के-से कछार
पद फटे बिवाई के, उधार
खाये के मुख ज्यों, पिये तेल
चमसैंधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते घोर-गन्ध,
उन चरणों को मैं यथा अन्ध
कल घ्राण-प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूजूँ, ऐसी नहीं शक्ति।
आये पण्डित जी, प्रजावर्ग,
आमन्त्रित साहित्यिक, ससर्ग
देखा विवाह आमूल नवल,
तुझ पर शुभ पड़ा कलश का जल।
देखती मुझे तू हँसी मन्द,
होठों में बिजली फँसी स्पन्द
उर में भर झूली छवि सुन्दर,
प्रिय की अशब्द शृंगार-मुखर
तू खुली एक उच्छ्वास-संग;

धर्मोत्तर = अति धार्मिक, परम न्यायी। हत = आहत, चोट खाया हुआ, घायल। कुलांगार = कुल में अंगार के समान, कुलनाशक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विश्वास-स्तब्ध बँध अंग-अंग,
नत नयनों से आलोक उतर
काँपा अधरों पर थर-थर-थर।

माँ की कुल शिक्षा मैंने दी,
पुष्प-सेज तेरी स्वयं रची,
सोचा मन में, "वह शकुन्तला,
पर पाठ अन्य यह अन्य कला।"
मुझ भाग्यहीन की तू संबल
युग वर्ष बाद जब हुई विकल,
दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही!
हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म रहे नत सदा माथ
इस पथ पर मेरे कार्य सकल
हों भ्रष्ट शीत के-से शतदल!
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर करता मैं तेरा तर्पण!

•

शतदल=कमल। अर्पण=दान देना, भेंट करना। तर्पण=तृप्त करने की क्रिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुमित्रानन्दन पंत

मृत्यु : २८ दिसम्बर १९७७ ई०.

सुषमा की पंखुड़ियाँ खुलतीं
फैला रहस्य स्पर्शों के दल,
भावों के मोहित पुलिनों पर
छाया प्रकाश बहता प्रतिपल !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रचनाएँ

काव्य-संग्रह

१. उच्छ्वास, २. वीणा, ३. ग्रन्थि, ४. पल्लव, ५. गुंजन, ६. युगांत, ७. युगवाणी, ८. ग्राम्या, ९. स्वर्णधूलि, १०. स्वर्ण-किरण, ११. मधुज्वाल (उमर खैयाम की रचनाओं का भावानुवाद), १२. युगपथ, १३. उत्तरा, १४. अतिमा, १५. वाणी, १६. कला और बूढ़ा चाँद, १७. किरण-वीणा, १८. पौ फटने से पहले, १९. गीतहंस, २०. लोकायतन (महाकाव्य), २१. शंख-ध्वनि, २२. शशि की तरी, २३. समाधिता, २४. गंधवीथि, २५. आस्था और २६. सत्यकाम (प्रबन्ध काव्य)।

काव्य-संकलन

१. पल्लविनी, २. आधुनिक कवि, ३. रश्मिबंध, ४. चिदम्बरा, ५. हरी बाँसुरी, सुनहरी टेर, ६. तारापथ और ७. ऋता।

गद्य-कृतियाँ

१. हार (उपन्यास), २. पाँच कहानियाँ, ३. शिल्प और दर्शन (निबन्धों, भाषणों और वार्ताओं का संकलन), ४. छायावाद : पुनर्मूल्यांकन, ५. कला और संस्कृति।

काव्य-रूपक

१. ज्योत्स्ना, २. रजत-शिखर, ३. शिल्पी, ४. उत्तरशती।

काव्यात्मक जीवन-चरित्र

१. मैं और मेरा जीवन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम रश्मि

प्रथम रश्मि का आना रङ्गिणि !
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ-कहाँ हे बाल-विहगिनि !
पाया, तूने यह गाना ?

सोयी थी तू स्वप्न-नीड़ में,
पंखों के सुख में छिपकर,
झूम रहे थे, घूम द्वार पर,
प्रहरी-से जुगनूं नाना !

शशि-किरणों से उतर-उतरकर,
भू पर कामरूप नभचर,
चूम नवल कलियों का मृदु मुख,
सिखा रहे थे मुसकाना !

स्नेह-हीन तारों के दीपक,
श्वास-शून्य थे तरु के पात,
विचर रहे थे स्वप्न अवनि में,
तम ने था मण्डप ताना !

कूक उठी सहसा तरुवासिनि !
गा तू स्वागत का गाना,
किसने तुझको अन्तर्यामिनि !
बतलाया उसका आना ?

निकल सृष्टि के अंध-गर्भ से,
छाया-तन बहु छाया-हीन,
चक्र रच रहे थे खल निशिचर,
चला कुहुक, टोना-माना !

रङ्गिणि=रँगीली। नभचर=देवता, गंधर्व, वायु। तरुवासिनि=वृक्ष पर निवास करने वाली, कोयल। छाया-तन=छाया के समान आकृति वाले निशिचर। कुहुक=प्रवंचना, इन्द्रजाल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छिपा रही थी मुख शशि-बाला,
निशि के श्रम से हो श्री-हीन,
कमल-क्रोड़ में बन्दी था अलि,
कोक शोक से दीवाना।

मूर्च्छित थीं इन्द्रियाँ, स्तब्ध जग,
जड़-चेतन सब एकाकार,
शून्य विश्व के उर में केवल,
साँसों का आना-जाना!

तूने ही पहले बहुदर्शिनि!
गाया जागृति का गाना,
श्री-सुख-सौरभ का नभचारिणि।
गूँथ दिया ताना-बाना!

निराकार तम मानो सहसा,
ज्योति-पुञ्ज में हो साकार,
बदल गया द्रुत जगत्-जाल में,
धर कर नाम-रूप नाना!

सिहर उठे पुलकित हो द्रुम-दल,
सुप्त समीरण हुआ अधीर,
झलका हास कुसुम अधरों पर,
हिल मोती का-सा दाना!

खुले पलक, फैली सुवर्ण-छवि,
जगी सुरभि, डोले मधु-बाल,
स्पन्दन, कम्पन औ' नवजीवन,
सीखा जग ने अपनाना;

प्रथम रश्मि का आना, रङ्गिणि!
तूने कैसे पहचाना?
कहाँ-कहाँ हे बाल-विहंगिनी!
पाया यह स्वर्गिक गाना?

●

नभचारिणि = पक्षी, कोयल। द्रुत = शीघ्र।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रन्थि

इन्दु पर, उस इन्दु-मुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से
लाज से रक्तिम हुए थे;—पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था!
बाल-रजनी-सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में
अचल, रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में!

एक पल, मेरे प्रिया के दृग-पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे,
चपलता ने इस विकम्पित पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय-सम्बन्ध था!
लाज की मादक सुरा-सी लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब-सी,
छलकती थी बाढ़-सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित गढ़ों से, सीप-से।
इन गढ़ों में—रूप के आवर्त-से—
घूम-फिर कर, नाव-से किसके नयन
हैं नहीं डूबे भटक कर, अटक कर,
भार से दब कर तरुण सौन्दर्य के?

जब प्रणय का प्रथम परिचय मूकता
दे चुकी थी हृदय को, तब यत्न से
बैठकर मैंने निकट ही, शान्त हो,
विनत वाणी में प्रिया से यों कहा—

इन्दु=चन्द्रमा। सस्मित=हास्ययुक्त। आवर्त=भँवर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सलिल-शोभे ! जो पतित आहत भ्रमर
सदय हो तुमने लगाया हृदय से,
एक तरल तरंग से उसको बचा
दूसरी, में क्यों डुबाती हो पुनः ?
'प्रेम-कण्टक से अचानक विद्ध हो
जो सुमन तरु से विलग है हो चुका,
निज दया से द्रवित उर में स्थान दे
क्या न सरस विकास दोगी तुम उसे ?
'मलिन उर छूकर तिमिर का अरुण-कर
कनक आभा में खिलाते हैं कमल,
प्रिय बिना तम-शेष मेरे हृदय की
प्रणय कलिका की तुम्हीं प्रिय कान्ति हो।

'यह विलंब ! कठोर-हृदये ! मग्न को
बालुका भी क्या बचाती है नहीं ?
निठुर का मुझको भरोसा है बड़ा,
गिरि-शिलाएँ ही अभय आधार हैं।
म्लान तम में ही कलाधर की कला
कौमुदी बन कीर्ति पाती है धवल,
दीनता के ही विकम्पित पात्र में
दान बढ़कर छलकता है प्रीति से।

प्रिय निराश्रित की कठिन बाँहें नहीं
शिथिल पड़ती हैं प्रलोभन-भार से,
अल्पता की संकुचित आँखें सदा
उमड़ती हैं अल्प भी अपनाव से।
'दयानिल से विपुल पुलकित हो सहज
सरल उपकृति का सजल मानस प्रिये !

सलिल-शोभे = कमलिनी, बालिका से तात्पर्य। आहत = घायल। अरुण-कर = सूर्य की किरणें। मग्न = डूबा हुआ। कलाधर = चन्द्रमा। कौमुदी = चाँदनी। विकम्पित = कँपते हुए, चंचल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षीण करुणालोक का भी लोक को
है वृहत् प्रतिविम्ब दिखलाता सदा।

'शरद के निर्मल तिमिर की ओट में
नव मिलन के पलक-दल-सा झूमता,
कौन मादक कर मुझे है छू रहा
प्रिय! तुम्हारी मूकता की आड़ से?
यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की,
जो अपांगों से अधिक है देखता
दूर होकर और बढ़ता है, तथा
वारि पीकर पूजता है घर सदा?'

इन्दु की छवि में. तिमिर के गर्भ में,
अनिल की ध्वनि में. सलिल की वीचि में,
एक उत्सुकता विचरती थी, सरल
सुमन की स्मिति में, लता के अधर में!
निज पलक, मेरी विकलता, साथ ही
अवनि से, उर से मृगेक्षिणि ने उठा
एक पल, निज स्नेह श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप-सी।

•

अपांग=आंखों की कोर। वीचि=लहर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर्वत-प्रदेश में पावस

पावस ऋतु थी, पर्वत-प्रदेश,
पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेश!
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार-बार
नीचे जल में निज महाकार,
—जिसके चरणों में पला ताल
दर्पण-सा फैला है विशाल!
गिरि का गौरव गाकर झर्-झर्
मद में नस-नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों से सुन्दर
झरते हैं झाग-भरे निर्झर!
गिरिवर के उर से उठ-उठ कर
उच्चाकांक्षाओं-से तरुवर,
हैं झाँक रहे नीरव नभ पर
अनिमेष, अटल, कुछ चिन्तापर!
उड़ गया अचानक लो भूधर,
फड़का अपार पारद के पर!
रवशेष रह गये हैं निर्झर!
है टूट पड़ा भू पर अम्बर!
धँस गये धरा में सभय शाल!
उठ रहा धुआँ, जल गया ताल!
—यों जलद यान में विचर-विचर
था इन्द्र खेलता इन्द्रजाल!

सभय=भययुक्त। शाल=साखू का वृक्ष।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(वह सरला उस गिरि को कहती थी बादल-घर)
इस तरह मेरे चितेरे हृदय की
चाक्ष्य प्रकृति बनी चमत्कृत चित्र थी;
सरल शैशव की सुखद सुधि-सी वही
वालिका मेरी मनोरम मित्र थी !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मौन-निमन्त्रण

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान;
न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन !

सघन मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार,
दीर्घ भरता समीर निःश्वास
प्रखर झरती जब पावस-धार,
न जाने, तपक तड़ित में कौन
मुझे इंगित करता तब मौन।

देख वसुधा का यौवन-भार
गूंज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के-से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास,
न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन !

क्षुब्ध जल शिखरों को जब वात
सिन्धु में मथकर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना, बिथुरा देती अज्ञात;

स्तब्ध = शान्त, नीरव। ज्योत्स्ना = चाँदनी। नादान = अबोध। भीमाकाश = भयावह आकाश। तमसाकार = अन्धकार से आच्छन्न। तपक = चमककर। बिथुराना = छिटकाना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उठा तब लहरों से कर कौन
न जाने मुझे बुलाता मौन!

स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ में भोर
विश्व को देती है जब बोर,
विहग-कुल की कल-कण्ठ हिलोर
मिला देती भू-नभ के छोर;

न जाने, अलस पलक दल कौन
खोल देता तब मेरे मौन!

तुमुल तम में जब एकाकार
ऊँघता एक साथ संसार,
भीरु झींगुर कुल की झनकार,
कँपा देती तन्द्रा के तार;

न जाने खद्योतों से कौन
मुझे पथ दिखलाता तब मौन!

कनक छाया में जब कि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प, बन जाते हैं गुञ्जार;

न जाने, ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन।

बिछा कार्यों का गुरुतर भार
दिवस को दे सुवर्ण अवसान,
शून्य शय्या में, श्रमित अपार,
जुड़ाती जब मैं आकुल प्राण;

न जाने मुझे स्वप्न में कौन
फिराता छाया जग में मौन!

कनक छाया=सुनहरी आभा। सकाल=प्रातःकाल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न जाने कौन, अये द्युतिमान !
जान मुझको अबोध, अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूंक देते छिद्रों में गान;

अहे सुख-दुख के सहचर मौन !
नहीं कह सकती तुम हो कौन !

•

द्युतिमान = कांतिमान ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिवर्तन

अहे निष्ठुर परिवर्तन !
तुम्हारा ही ताण्डव नर्तन,
विश्व का करुण विवर्तन !
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान, पतन !
अहे वासुकि सहस्र फन !

लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षःस्थल पर !
शत-शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर !
मृत्यु तुम्हारा गरल दन्त, कंचुक कल्पान्तर,
अखिल विश्व ही विवर
वक्र कुण्डल
दिङ्मण्डल !

(२)

अहे दुर्जेय विश्वजित् !
नवाते शत सुरवर, नरनाथ
तुम्हारे इन्द्रासन तल माथ;
घूमते शत-शत भाग्य अनाथ,
सतत रथ के चक्रों के साथ;

विवर्तन = घूमना, चक्कर खाना। नयनोन्मीलन = नेत्रों का खुलना। विक्षत = कटा-पिटा। फेनोच्छ्वसित = फेनयुक्त उच्छ्वास। स्फीत = सघन, मोटी। कंचुक = कँचुल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम नृशंस नृप-से जगती पर चढ़ अनियन्त्रित
करते हो संसृति को उत्पीड़ित, पदमर्दित;
नग्न नगर कर, भग्न भवन, प्रतिमाएँ खण्डित,
हर लेते हो विभव, कला कौशल चिर संचित !
आधि, व्याधि, बहुवृष्टि, वात उत्पात, अमंगल,
वह्नि, बाढ़, भूकम्प,—तुम्हारे विपुल सैन्य-दल;
अहे निरंकुश ! पदाघात से जिनके विह्वल
हिल-हिल उठता है टल-मल
पददलित धरातल !

(३)

जगत का अविरत हृत्कंपन
तुम्हारा ही भय-सूचन;
निखिल पलकों का मौन पतन
तुम्हारा ही आमन्त्रण !
विपुल वासना विकच विश्व का मानस शतदल
छान रहे तुम, कुटिल काल कृमि-से घुस पल-पल;
तुम्हीं स्वेद सिंचित संसृति के स्वर्ण शस्य दल
दलमल देते, वर्षोपल बन, वांछित कृषि-फल !
अये, सतत ध्वनि स्पंदित जगती का दिङ्मण्डल
नैश गगन-सा सकल
तुम्हारा ही समाधिस्थल !

(४)

काल का अकरुण भृकुटि-विलास
तुम्हारा ही परिहास;
विश्व का अश्रुपूर्ण इतिहास
तुम्हारा ही इतिहास !

नृशंस = क्रूर । आधि = मानसिक पीड़ा । व्याधि = शारीरिक पीड़ा । निरंकुश = स्वेच्छाचारी । अविरत = विरामहीन, निरंतर । निखिल = संपूर्ण । वर्षोपल = ओलों की वर्षा । कृषिफल = अनाज, फसल ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक कठोर कटाक्ष तुम्हारा अखिल प्रलयकर
समर छेड़ देता निसर्ग संसृति में निर्भर;
भूमि चूम जाते अभ्रध्वज सौध, शृंगवर,
नष्ट-भ्रष्ट साम्राज्य-भूति के मेघाडम्बर!
अये, एक रोमांच तुम्हारा दिग्भू-कंपन,
गिर-गिर पड़ते भीत पक्षि-पोतों-से उडुगन;
आलोड़ित अम्बुधि फेनोन्नत कर शत-शत फन,
मुग्ध भुजंगम-सा, इंगित पर करता नर्तन!
दिक्-पिंजर में बद्ध, गजाधिप-सा विनतानन,
वाताहत हो गगन
आर्त करता गुरु गर्जन!

(५)

जगत की शत कातर चीत्कार
बेधती बधिर, तुम्हारे कान!
अश्रु-स्रोतों की अगणित धार
सींचती उर पाषाण!
अरे क्षण-क्षण सौ-सौ निःश्वास
छा रहे जगती का आकाश!
चतुर्दिक् घहर घहर आक्रांति
ग्रस्त करती सुख-शान्ति!

(६)

हाय री दुर्बल भ्रान्ति!--
कहाँ नश्वर जगती में शान्ति?
सृष्टि ही का तात्पर्य अशान्ति!
जगत अविरत जीवन-संग्राम,
स्वप्न है यहाँ विराम!

निसर्ग=प्रकृति। निर्भर=बहुत अधिक, तीव्र, गाढ़। अभ्रध्वज सौध=गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ। भूति=वैभव। पक्षि-पोत=पक्षि शावक। दिक्-पिंजर=दिशारूपी पिंजड़ा। विनतानन=अधोमुख। आक्रांति=कब्जा करना, शक्ति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सौ वर्ष, नगर-उपवन;
एक सौ वर्ष, विजन वन !
—यही तो है असार संसार,
सृजन, सिंचन, संहार !
आज गर्वोन्नत हर्म्य अपार,
रत्न दीपावलि, मन्त्रोच्चार;
उलूकों के कल भग्न विहार,
झिल्लियों की झनकार !
दिवस-निशि का यह विश्व विशाल
मेघ-मारुत का मायाजाल !

हर्म्य = महल, प्रासाद ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नौका विहार

शान्त, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल !
अपलक अनंत, नीरव भूतल !
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी हैं श्रान्त, क्लांत, निश्चल !
तापस बाला गंगा निर्मल, शशि मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरें उर पर कोमल कुन्तल !
गोरे अंगों पर सिहर सिहर, लहराता तार तरल सुन्दर,
चञ्चल अञ्चल-सा नीलाम्बर !
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर, शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी हैं वर्तुल मृदुल लहर !
चाँदनी रात का प्रथम प्रहर,
हम चले नाव लेकर सत्वर !
सिकता की सस्मित सीपी पर मोती की ज्योत्स्ना रही विचर,
लो, पालें चढ़ीं, उठा लंगर !
मृदु मंद-मंद, मंथर-मंथर, लघु तरणि हंसिनी-सी सुन्दर,
तिर रही खोल पालों के पर !
निश्चल जल के शुचि दर्पण पर बिम्बित हो रजत पुलिन निर्भर,
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर !
कालाकांकर का राजभवन, सोया जल में निश्चिन्त, प्रमन,
पलकों में वैभव स्वप्न सघन !

स्निग्ध = चिकना, आर्द्र । सैकत = बालू । तन्वंगी = दुबली-पतली । श्रांत = थकी हुई । क्लांत = मुरझाई हुई । कुन्तल = बाल । विभा = कांति । वर्तुल = वृत्ताकार । सत्वर = शीघ्र । शुचि = पवित्र, निर्मल । निर्भर = अवलंबित । कालाकांकर = प्रतापगढ़ जिले का एक प्रसिद्ध स्थान । प्रमन = प्रसन्नचित्त ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नौका से उठती जल हिलोर!
हिल पड़ते नभ के ओर-छोर!
विस्फारित नयनों से निश्चल, कुछ खोज रहे चल तारक दल,
ज्योतित कर जल का अंतस्तल,
जिनके लघु दीपों को चंचल, अंचल की ओट किए अविरल,
फिरतीं लहरें लुक-छिप पल-पल!
सामने शुक्र की छवि झलमल तैरती परी-सी जल में कल,
रुपहरे कचों में हो ओझल!

लहरों के घूंघट से झुक-झुक, दशमी का शशि निज तिर्यक् मुख
दिखलाता, मुग्धा-सा रुक-रुक!
अब पहुंची चपला बीच धार!
छिप गया चांदनी का कगार!
दो बाहों-से दूरस्थ तीर, धारा का कृश कोमल शरीर,
आलिंगन करने को अधीर!

अति दूर, क्षितिज पर विटप माल, लगती भ्रू-रेखा-सी अराल,
अपलक नभ नील नयन विशाल!
मां के उर पर शिशु-सा, समीप, सोया धारा में एक द्वीप,
उर्मिल प्रवाह को कर प्रतीप;
वह कौन विहग? क्या विकल कोक उड़ता, हरने निज विरह-शोक,
छाया की कोकी को विलोक!

पतवार घुमा अब प्रतनु भार
नौका घूमी विपरीत धार!
डांडों के चल करतल पसार, भर-भर मुक्ताफल फेन-स्फार,
बिखराती जल में तार हार!
चांदी के सांपों-सी रलमल नाचतीं रश्मियां जल में चल,
रेखाओं-सी खिंच तरल सरल!

विस्फारित = खुले हुए। तिर्यक् = वक्र। कगार = किनारा। विटपमाल = वृक्षों की पंक्ति। भ्रूरेखा = भौंहों की रेखा। अराल = टेढ़ी। प्रतीप = उलटा। प्रतनु = अत्यन्त क्षीण, हल्की। स्फार = फैला हुआ। रलमल = घुली-मिली।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लहरों की ललिकाओं में खिल, सौ-सौ शशि सौ-सौ उडु झिलमिल
फैले फूले जल में फेनिल !
अब उथला सरिता का प्रवाह, लगी से ले ले सहज थाह,
हम बढ़े घाट को सहोत्साह !
ज्यों-ज्यों लगती है नाव पार
उर में आलोकित शत विचार ! ६१

इस धारा-सा ही जग का क्रम, शाश्वत, इस जीवन का उद्गम,
शाश्वत है गति ! शाश्वत संगम !
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास,
शाश्वत लघु लहरों का विलास !
हे जग जीवन के कर्णधार ! चिर जन्म मरण के आर पार,
शाश्वत जीवन-नौका विहार !

मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण,
करता मुझको अमरत्व दान ! ६२

•

' कर्णधार = नाविक, ईश्वर । शाश्वत = चिरंतन, नित्य ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रुत झरो

द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र !
हे स्रस्त ध्वस्त ! हे शुष्क शीर्ण !
हिम-ताप पीत, मधुवात भीत,
तुम वीतराग, जड़, पुराचीन !
निष्प्राण विगत युग ! मृत विहंग
जग नीड़ शब्द औ' श्वासहीन,
च्युत, अस्त-व्यस्त पंखों-से तुम
झर-झर अनन्त में हो विलीन !

कंकाल जाल जग में फैले
फिर नवल रुधिर,—पल्लव लाली !
प्राणों की मर्मर में मुखरित
जीवन की मांसल हरियाली !
मंजरित विश्व में यौवन के
जग कर जग की पिक मतवाली
निज अमर प्रणय स्वर-मदिरा से
भर दे फिर नव युग की प्याली !

●

द्रुत = शीघ्र । जीर्ण = पुराना, जर्जर । स्रस्त = गिरा हुआ, पतित । शीर्ण = सड़ा-गला, कुम्हलाया हुआ । पीत = पीला । मधुवात = वासंती पवन । वीतराग = विरागी, अनासक्त । पुराचीन = प्राचीन, पहले का, पूरब का ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बापू के प्रति

तुम मांसहीन, तुम रक्तहीन,
हे अस्थिशेष तुम अस्थिहीन,
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल,
हे चिर पुराण हे चिर नवीन!
तुम पूर्ण इकाई जीवन की,
जिसमें असार भव-शून्य लीन;
आधार अमर होगी जिस पर
भावी की संस्कृति समासीन!

तुम मांस, तुम्हीं हो रक्त अस्थि—
निर्मित जिनसे नव युग का तन,
तुम धन्य! तुम्हारा नि स्व त्याग
है विश्व भोग का वर साधन।
इस भस्मकाम तन की रज से
जग पूर्णकाम नव जग जीवन
बीनेगा सत्य अहिंसा के
ताने-बानों से मानवपन!
सदियो का दैन्य तमिस्र तूम,
धुन तुमने, कात प्रकाश-सूत,
हे नग्न, नग्न पशुता ढँक दी
बुन नव संस्कृति मनुजत्व पूत।
जग पीड़ित छूतों से प्रभूत,
छू अमृत स्पर्श से हे अछूत!

निःस्व = धनहीन, दरिद्र। तमिस्र = अज्ञानान्धकार। तूम = रूई। प्रकाश-सूत = ज्ञानरूपी प्रकाश का सूत। मनुजत्व = मानवता। पूत = पवित्र। प्रभूत = बहुत अधिक, प्रचुर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुमने पावन कर मुक्त किए
मृत संस्कृतियों के विकृत भूत !

सुख भोग खोजने आते सब,
आये तुम करने सत्य खोज,
जग की मिट्टी के पुतले जन,
तुम आत्मा के मन के मनोज !

जड़ता हिंसा स्पर्धा में भर,
चतना अहिंसा नम्र ओज,
पशुता का पंकज बना दिया
तुमने मानवता का सरोज !

साम्राज्यवाद था कंस, बंदिनी
मानवता पशु-बलाक्रान्त,
शृंखला दासता प्रहरी बहु
निर्मम शासन पदशक्ति भ्रान्त;

कारागृह में दे दिव्य जन्म
मानव आत्मा को मुक्त, कांत,
जन-शोषण की बढ़ती यमुना
तुमने की नत-पद-प्रणत शांत !

विकृत भूत = विकृत रूप, विकृत अवस्था को प्राप्त । मनोज = कामदेव ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताज

हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन ?
जब विषण्ण, निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन !
स्फटिक-सौध में हो शृङ्गार मरण का शोभन,
नग्न, क्षुधातुर, वासविहीन रहें जीवित जन ?

मानव ! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति ?
आत्मा का अपमान, प्रेत औ' छाया से रति !!
प्रेम अर्चना यही, करें हम मरण को वरण ?
स्थापित कर कंकाल, भरें जीवन का प्राङ्गण ?

शव को दें हम रूप, रंग, आदर मानव का
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का ?
युग-युग के मृत आदर्शों के ताज मनोहर
मानव के मोहांध हृदय में किये हुए घर

भूल गये हम जीवन का संदेश अनश्वर
'मृतकों के हैं मृतक, जीवितों का है ईश्वर !'

अपार्थिव=जो पृथ्वी से सम्बन्धित न हो, अलौकिक। विषण्ण=दुःखी, शोकमग्न। स्फटिक = बिल्लौर, सूर्यकान्तमणि, यहाँ स्फटिक-सौध से तात्पर्य संगमरमर निर्मित 'ताजमहल' से है। अनश्वर=सतत, शाश्वत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महादेवी वर्मा

जन्म : १९०७ ई०

चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम
मधुर राग तू मैं स्वरसंगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम;
काया-छाया में रहस्यमय !
प्रेयसि-प्रियतम का अभिनय
क्या !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रचनाएँ

काव्य-संग्रह

१. नीहार, २. रश्मि, ३. नीरजा, ४. सांध्यगीत, ५. सन्धिनी, ६. दीपशिखा, ७. यामा, ८. गीतपर्व और ९. परिक्रमा (प्रथम चार काव्य-संग्रहों का एकत्र संकलन)।

अनुवाद

१. सप्तपर्णा (ऋग्वेद से लेकर संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के महान् कवियों की चुनी हुई रचनाओं का पद्यानुवाद)।

सम्पादित ग्रन्थ

१. हिमालय (हिमालय से सम्बद्ध पुराने और नये कवियों की चुनी हुई रचनाओं का संकलन)।

गद्य-रचनाएँ

१. स्मृति की रेखाएँ, २. शृंखला की कड़ियाँ, ३. क्षणदा, ३. पथ के साथी, ५. अतीत के चलचित्र, ६. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, ७. मेरा परिवार, ८. स्मारिका, ९. दृष्टिबोध और १०. सम्भाषण (निबन्ध)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वसन्त रजनी

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसंत-रजनी !
तारकमय नव वेणीबन्धन
शीश-फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि-वलय सित घन-अवगुंठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी !
पुलकती आ वसंत-रजनी !

मर्मर की सुमधुर नूपर-ध्वनि,
अलि-गुंजित पद्मों की किंकिणि,
भर पद-गति में अलस तरंगिणि,
तरल रजत की धार बहा दे
मृदु स्मित से सजनी !
विहँसती आ वसन्त-रजनी !
पुलकित स्वप्नों की रोमावलि,
कर में हो स्मृतियों की अंजलि,
मलयानिल का चल दुकूल अलि !
घिर छाया-सी श्याम, विश्व को
आ अभिसार बनी !
सकुचती आ वसन्त-रजनी !

रश्मि वलय = किरणों का कंगन । सित घन अवगुण्ठन = सफेद बादलों का घूँघट । मुक्ताहल = मुक्ताफल, मोती । अभिराम = मोहक, सुन्दर । किंकिणि = करधनी । तरंगिणि = तरंगों वाली, नदी । रजत = चाँदी, चाँदनी । दुकूल = वस्त्र । अभिसार बनी = अभिसार करने वाली दूल्हन, अभिसारिका ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिहर सिहर उठता सरिता-उर,
खुल खुल पड़ते सुमन सुधा-भर,
मचल मचल आते पल फिर फिर,
सुन प्रिय की पद-चाप हो गयी
पुलकित यह अवनी!
सिहरती आ वसन्त-रजनी!

सिहर सिहर उठता = तरंगायित हो उठता। सरिता-उर = नदी का वक्ष, नदी के जल की ऊपरी सतह।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन विरह का जलजात

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात !
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास;
अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु गिनती रात !
जीवन विरह का जलजात !

आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु का टकसाल;
तरल जलकण से बने घन-सा क्षणिक मृदु गात !
जीवन विरह का जलजात !

अश्रु से मधुकण लुटाता आ यहाँ मधुमास;
अश्रु ही की हाट बन आती करुण बरसात !
जीवन विरह का जलजात !

काल इसको दे गया पल-आँसुओं का हार;
पूछता इसकी कथा निश्वास ही में वात !
जीवन विरह का जलजात !

जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज;
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात !
जीवन विरह का जलजात !

●

कोष = निधि, भाण्डार । टकसाल = वह स्थान जहाँ सिक्के ढाले जाते हैं (आँखों के टकसाल में आँसू सिक्कों की तरह ढलते रहते हैं) । मधुमास = वसंत । हाट = बाजार, दूकान । लीलाकमल = विनोद या क्रीड़ा के लिए हाथ में लिया हुआ कमल ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ !

नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण-कण में,
प्रथम जागृति थी जगत् के प्रथम स्पन्दन में,
प्रलय में मेरा पता पदचिह्न जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में,
कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ !
नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ;
दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ !
आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिम-जल के,
शून्य हूँ जिसको बिछे हैं पाँवड़े पल के,
पुलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर में;
हूँ वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर में;
नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ !
नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,
तार भी आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी;
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ !

●

बीन = वीणा । कूल = किनारा । प्रवाहिनी = नदी । बुलबुल = फूलों की आशिक एक छोटी चिड़िया, जिसकी बोली बहुत मीठी होती है । पाँवड़ा = वह कपड़ा जो किसी आदरणीय व्यक्ति के पाँव रखकर चलने के लिए उसके मार्ग में बिछाया जाता है । पल = पलक, क्षण । आधार = सहारा, आलंबन (ईश्वर) ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

रूपसि तेरा घन-केश-पाश !
श्यामल-श्यामल कोमल-कोमल !
लहराता सुरभित केश-पाश !

नभगंगा की रजत धार में,
धो आई क्या इन्हें रात ?
कंपित हैं तेरे सजल अंग,
सिहरा-सा तन है सद्यस्नात !
भीगी अलकों के छोरों से
चूती बूँदें कर विविध लास
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

सौरभभीना झीना गीला
लिपटा मृदु अंजन-सा दुकूल;
चल अंचल से झर-झर झरता
पथ में जुगनू के स्वर्ण फूल;
दीपक से देता बार बार
तेरा उज्ज्वल चितवन-विलास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

केशपाश=अलक पाश, जूड़ा। लास=नृत्य। स्वर्णफूल=सुनहले पुष्प, सलमा-सितारे से टंकित आँचल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है
वक पाँतों का अरविन्द-हार;
तेरी निश्वासें छू भू की
वन-बन जातीं मलयज बयार;
केकी-रव की नूपुर-ध्वनि सुन
जगती जगती की मूक प्यास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

इन स्निग्ध लटों से छा दे तन,
पुलकित अंकों में भर विशाल;
झुक सस्मित शीतल चुम्बन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल;
दुलरा दे ना बहला दे ना,
यह तेरा शिशु जग है उदास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

•

वक = बगुला । अरविन्द = कमल । केकी = मोर । स्निग्ध = चिकनी, कोमल ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं बनी मधुमास आली !

मैं बनी मधुमास आली
आज मधुर विषाद की घिर करुण आयी यामिनी;
बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चाँदनी,
उमड़ आयी री दृगों में
सजिनि कालिन्दी निराली !
रजत स्वप्नों में उदित अपलक विरल तारावली;
जाग सुख पिक ने अचानक मदिर पंचम तान ली,
बह चली निश्वास की मृदु
वात मलय-निकुञ्ज पाली !
सजल रोमों में बिछे हैं, पाँवड़े मधु-स्नात-से,
आज जीवन के निमिष भी दूत हैं अज्ञात-से,
क्या न अब प्रिय की बजेगी
मुरलिका मधु-रागवाली ?
मैं बनी मधुमास आली !

मधुमास=वसंत। यामिनी=रात। कालिन्दी=यमुना। मदिर=नशीली, मदभरी। पंचम तान=संगीत के सप्तक का पाँचवाँ स्वर जो कोयल की कूक के सदृश माना जाता है, पंचम स्वर। पाली-पंक्ति, श्रेणी। निमिष=क्षण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या पूजन क्या अर्चन रे ?

क्या पूजन क्या अर्चन रे ?
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे !

पद रज को धोने उमड़े आते लोचन में जल-कण रे !
अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे !
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक मन रे !
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे !

धूप बने उड़ते जाते हैं प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे !
प्रिय-प्रिय जपते अधर, ताल देता पलकों का नर्तन रे !

●

असीम = सीमाहीन, ईश्वर । अक्षत = अखंडित, चावल जिसका उपयोग पूजा में किया जाता है । उत्पल = नीलकमल, कमल । उन्मीलन = विकसित होना ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं नीर भरी दुख की बदली !

मैं नीर भरी दुख की बदली !
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते,
पलकों में निर्झरिणी मचली !
मेरा पग-पग संगीत भरा,
श्वासों से स्वप्न पराग झरा,
नभ के नव रँग बुनते दुकूल,
छाया में मलय-बयार पली!

मैं क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल,
चिन्ता का भार बनी अविरल,
रज-कण पर जल-कण हो बरसी,
नव जीवन-अंकुर बन निकली !
पथ को न मलिन करता आना,
पद चिह्न न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम की जग में,
सुख की सिहरन हो अंत खिली!

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली !]१०६

•

निर्झरिणी = झरने से निकलने वाली नदी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिर सजग आँखें उनींदी···

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना !
जाग तुझको दूर जाना !

अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले,
या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले,
आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,
जाग या विद्युत्-शिखाओं में निठुर तूफान बोले !
पर तुझे है नाश-पथ पर चिह्न अपने छोड़ आना !

बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बंधन सजीले ?
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रँगीले ?
विश्व का क्रन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुन-गुन,
क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले ?
तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना !

वज्र का उर एक छोटे अश्रु-कण में धो गलाया,
दे किसे जीवन-सुधा दो घूँट मदिरा माँग लाया ?
सो गई आँधी मलय की बात का उपधान ले क्या ?
विश्व का अभिशाप क्या चिर नींद बनकर पास आया ?
अमरता-सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना ?

उनींदी = अलसाई । बाना = वेश । नाश-पथ = नश्वर जग । मोम के बन्धन = भौतिक सुखों के कोमल और नश्वर आकर्षण । जीवन-सुधा = वास्तविक प्राणशक्ति । उपधान = तकिया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कह न ठंढी साँस में अब भूल वह जलती कहानी,
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी,
हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका,
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी!
है तुझे अंगार-शय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना!

•

जलती कहानी = उत्तेजक गाथा। अंगार-शय्या = प्रतिकूल परिस्थिति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंथ होने दो अपरिचित

पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला !
घेर ले छाया अमा बन,
आज कज्जल-अश्रुओं में रिमझिमा ले यह घिरा घन;
और होंगे नयन सूखे,
तिल बुझे औ' पलक रूखे,
आर्द्र चितवन में यहाँ
शत विद्युतों में दीप खेला !

अन्य होंगे चरण हारे,
और हैं जो लौटते, दे शूल को संकल्प सारे;
दुखव्रती निर्माण उन्मद,
यह अमरता नापते पद,
बाँध देंगे अंक - संसृति
से तिमिर में स्वर्ण बेला !

दूसरी होगी कहानी,
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोई निशानी,
आज जिस पर प्रलय विस्मित,
मैं लगाती चल रही नित,
मोतियों की हाट औ'
चिनगारियों का एक मेला !

खेला=क्रीड़ा । शूल=वेदना, काँटा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हास का मधु-दूत भेजो,
रोष की भ्रू-भंगिमा पतझार को चाहे सहेजो !
ले मिलेगा उर अचंचल
वेदना-जल, स्वप्न-शतदल,
जान लो वह मिलन एकाकी
विरह में है दुकेला !
पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला ! १०६

•

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन्दिर का दीप

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो !

रजत शंख-घड़ियाल स्वर्ण वंशी-वीणा-स्वर,
गये आरती वेला को शत-शत लय से भर,
जब था कल कंठों का मेला,
विहँसे उपल तिमिर था खेला,
अब मन्दिर में इष्ट अकेला,
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो !

चरणों से चिह्नित अलिन्द की भूमि सुनहली,
प्रणत शिरों के अंक लिये चन्दन की दहली,
झरे सुमन बिखरे अक्षत सित,
धूप - अर्घ्य - नैवेद्य अपरिमित
तम में सब होंगे अंतर्हित,
सबकी अर्चित कथा इसी लौ में पलने दो !

पल के मनके फेर पुजारी विश्व सो गया,
प्रतिध्वनि का इतिहास प्रस्तरों बीच खो गया,
साँसों की समाधि सा जीवन,
मसि-सागर का पंथ गया बन,
रुका मुखर कण-कण का स्पन्दन,
इस ज्वाला में प्राण रूप फिर से ढलने दो !

घड़ियाल = घण्टा । उपल = ओला, बादल । अजिर = आँगन । अलिंद = बाहरी दरवाजे के सामने का चबूतरा या छज्जा । अर्चित = सम्मानित । मनका = माला, माला की गुरिया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

झंझा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्च्छा गहरी,
आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी,
जब तक लौटे दिन की हलचल,
तब तक यह जागेगा प्रति पल,
रेखाओं में भर आभा-जल
दूत साँझ का इसे प्रभाती तक चलने दो ! ११७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सब आँखों के आँसू उजले

सब आँखों के आँसू उजले सबके सपनों में सत्य पला !
जिसने उसको ज्वाला सौंपी
उसने इसमें मकरन्द भरा,
आलोक लुटाता वह घुल-घुल
देता झर यह सौरभ बिखरा !
दोनों संगी पथ एक किन्तु कब दीप खिला कब फूल जला ?

वह अचल धरा को भेंट रहा
शत-शत निर्झर में हो चंचल,
चिर परिधि बना भू को घेरे
इसका नित उर्मिल करुणा-जल !
कब सागर उर पाषाण हुआ, कब गिरि ने निर्मम तन बदला ?

नभ-तारक-सा खंडित पुलकित
यह सुर-धारा को चूम रहा,
वह अंगारों का मधु-रस पी
केशर किरणों-सा झूम रहा !
अनमोल बना रहने को कब टूटा कंचन हीरक पिघला ?

नीलम मरकत के संपुट दो
जिनमें बनता जीवन-मोती,
इसमें ढलते सब रंग-रूप
उसकी आभा स्पन्दन होती !
जो नभ में विद्युत् मेघ बना वह रज में अंकुर हो निकला !

उर्मिल = तरंगायित । सुरधारा = गंगा । केशर = कुंकुम, सोना । हीरक = हीरा । नीलम = इन्द्रनील मणि । मरकत = पन्ना ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसृति के प्रति पग में मेरी
साँसों का नव अंकन चुन लो,
मेरे बनने-मिटने में नित
अपनी साधों के क्षण गिन लो!
जलते-खिलते बढ़ते जग में घुल-मिल एकाकी प्राण चला!
सपने-सपने में सत्य ढला! ७१२

•

अंकन = चिह्न।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छायावाद

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

'छायावाद' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्य-वाद के अर्थ में, जहाँ उसका सम्बन्ध काव्यवस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। रहस्यवाद की अन्तर्भूत रचनाएँ पहुँचे हुए पुराने सन्तों या साधकों की उस वाणी के अनुकरण पर होती हैं जो तुरीयावस्था या समाधिदशा में नाना रूपकों के रूप में उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का आभास देती हुई मानी जाती थीं। इस रूपात्मक आभास को योरपी 'छाया' (फैंटममाटा) कहते थे। इसी से बंगाल में ब्रह्मसमाज के बीच उक्त वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत या भजन बनते थे वे 'छायावाद' कहलाने लगे। धीरे-धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र से वहाँ के साहित्यक्षेत्र में आया और फिर रवीन्द्र बाबू की धूम मचने पर हिन्दी के साहित्यक्षेत्र में भी प्रकट हुआ।

'छायावाद' शब्द का दूसरा प्रयोग काव्यशैली या पद्धतिविशेष के व्यापक अर्थ में है। सन् १८८५ में फ्रांस में रहस्यवादी कवियों का एक दल खड़ा हुआ जो प्रतीकवादी (सिंबालिस्ट्स) कहलाया। वे अपनी रचनाओं में प्रस्तुतों के स्थान पर अधिकतर अप्रस्तुत प्रतीकों को लेकर चलते थे। इसी से उनकी शैली की ओर लक्ष्य करके 'प्रतीकवाद' शब्द का व्यवहार होने लगा। आध्यात्मिक या ईश्वरप्रेम सम्बन्धी कविताओं के अतिरिक्त और सब प्रकार की कविताओं के लिए भी प्रतीक-शैली की ओर वहाँ प्रवृत्ति रही। हिन्दी में 'छायावाद' शब्द का जो व्यापक अर्थ में—रहस्यवादी रचनाओं के अतिरिक्त अन्य प्रकार की रचनाओं के सम्बन्ध में भी—ग्रहण हुआ वह इसी प्रतीकशैली के अर्थ में। छायावाद कमें सामान्यतः अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करनेवाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन। इस शैली के भीतर किसी वस्तु या विषय का वर्णन किया जा सकता है।

'छायावाद' का केवल पहला अर्थात् मूल अर्थ लेकर तो हिन्दी-काव्यक्षेत्र में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चलनेवाली श्री महादेवी वर्मा ही हैं। पन्त, प्रसाद, निराला इत्यादि और सब कवि प्रतीकपद्धति या चित्रभाषाशैली की दृष्टि से ही छायावादी कहलाये।

चित्रभाषाशैली या प्रतीकपद्धति के अन्तर्गत जिस प्रकार वाचक पदों के स्थान पर लक्षक पदों का व्यवहार आता है उसी प्रकार प्रस्तुत प्रसंग के स्थान पर उसकी व्यंजना करनेवाले अप्रस्तुत चित्रों का विधान भी। अतः अन्योक्ति-पद्धति का अवलम्बन भी छायावाद का एक विशेष लक्षण हुआ। यह पहले कहा जा चुका है कि छायावाद का चलन द्विवेदीकाल की रूखी इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। अतः इस प्रतिक्रिया का प्रदर्शन केवल लक्षण और अन्योक्ति के प्राचुर्य के रूप में ही नहीं, कहीं-कहीं उपमा और उत्प्रेक्षा की भरमार के रूप में भी हुआ। इनमें से उपादान और लक्षण-लक्षणाओं को छोड़ और सब बातें किसी न किसी प्रकार की साम्यभावना के आधार पर ही खड़ी होनेवाली हैं। साम्य को लेकर अनेक प्रकार की अलंकृत रचनाएँ बहुत पहले भी होती थीं तथा रीतिकाल के और उसके पीछे भी होती रही हैं। अतः छायावाद की रचनाओं के भीतर साम्यग्रहण की उस प्रणाली का निरूपण आवश्यक है जिसके कारण उसे एक विशिष्ट रूप प्राप्त हुआ।

छायावाद बड़ी सहृदयता के साथ प्रभावसाम्य पर ही विशेष लक्ष्य रखकर चला है। कहीं-कहीं तो बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यन्त अल्प या न रहने पर भी आभ्यन्तर प्रभावसाम्य लेकर ही अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है। ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप में या प्रतीकवत् (सिम्बालिक) होते हैं—जैसे सुख, आनन्द, प्रफुल्लता, यौवनकाल इत्यादि के स्थान पर उनके द्योतक उषा, प्रभात, मधुकाल; प्रिया के स्थान पर मुकुल; प्रेमी के स्थान पर मधुप; श्वेत या शुभ्र के स्थान पर कुन्द, रजत; माधुर्य के स्थान पर मधु; दीप्तिमान् या कान्तिमान् के स्थान पर स्वर्ण; विषाद या अवसाद के स्थान पर अन्धकार, अँधेरी रात, सन्ध्या की छाया, पतझड़; मानसिक आकुलता या क्षोभ के स्थान पर झंझा, तूफान; भावतरंग के लिए झंकार; भावप्रवाह के लिए संगीत या मुरली का स्वर इत्यादि। आभ्यन्तर प्रभावसाम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ और प्रचुर विकास छायावाद की काव्यशैली की असली विशेषता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi